

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182615

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08
G68 K

Accession No. H 2482

Author गौड, कृष्णदेव प्रसाद

Title कविता काकनी

This book should be returned on or before the date
last marked below.

कविता काकली

[स्कूल के लिये हिंदी कविताओं का संकलन]

संपादक

जगन्नाथदेव प्रसाद गौड़ एम. ए., एल. टी.,

आचार्य

डी. ए. बी इंटर कालेज, बनारस ।

प्रकाशक

मनोहर प्रेस

बनारस ।

प्राप्तिस्थान

नन्दकिशोर ऐराज ब्रदर्स

बनारस

सर्वोदय साहित्य मंदिर,

कोठी, (बसस्टण्ड,) हैदराबाद २,

[मूल्य १॥)



मुद्रक—

विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस, भैरोनाथ, बनारस ।



पाठ-सूची

॥बीर साहब	१
—सूरदास	८
३—जायसी	१८
४—मीरा	२३
५—गोस्वामी तलसीदास	२८
६—रहीम	४६
७—केशवदास	५१
८—बिहारी	६३
९—भूषण	७०
१०—पद्माकर	७३
११—नरोत्तमदास	७७
१२—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	८१
१३—दीनदयाल गिरि	८५
१४—श्रीधर पाठक	८८
१५—रत्नाकर	९१
१६—हरिऔध	९७
१७—जयशंकर प्रसाद	१०६
१८—सुभद्रा कुमारी चौहान	११३
१९—मैथिलीशरण गुप्त	११८
२०—सियाराम शरण	१२६
२१—निराला	१३०
२२—सुमित्रा नन्दन पंत	१३४
२३—ठाकुर गोपाल शरण सिंह	१४२
२४—श्यामनारायण पांडेय	१४६
२५—दिनकर	१५०

कबीर साहब

[सं० १४४६-१५७५]

कबीर के संबंध में ठीक ठीक ज्ञान नहीं है उनकी रचनाएँ तथा परंपरागत कथाओं से कुछ पता चलता है। काशी के पास लहरतारा एक गांव है उसी के पास तालाब के निकट एक जुलाहे ने इन्हें पाया। उसीने इन्हें पाला-पोसा, तथा अपना काम सिखाया। एकाएक गंगा के किनारे प्रातः समय स्वामी रामानंद से इनसे भेंट हो गयी। उन्हींके यह शिष्य हो गये। इन्होंने किसी पाठशाला में शिक्षा नहीं पायी। संगति से इन्होंने हिंदू धर्म के संबंध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। योगियों से भी इन्होंने योग की बहुत बातें सुनी थीं। ये ज्ञान-मार्ग के निर्गुण उपासना के संत थे। इनका संप्रदाय कबीर-पंथ कहा जाता है। इस संप्रदाय में हिंदू-मुसलमान दोनों हैं।

इन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक पाखंड के विरोध में आवाज उठायी। हिंदू-धर्म और इसलाम दोनों में जहां बुद्धिहीन तर्कहीन बातें धर्म के नाम पर चलती थीं उनका जोरदार खंडन और आलोचना की। यदि इन्हें पहला हिंदी का व्यंग का कवि कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनकी शिक्षा मार्मिक होती थी। इन्होंने दोहे, तथा गेय पद भी लिखे हैं, जिन्हें सबद कहते हैं। इनकी भाषा को रामचन्द्र शुक्ल ने सधुक्कड़ी भाषा कहा है। इसका अर्थ है वह हिंदी भाषा जिसमें राजस्थानी तथा पंजाबी मिली हो। कहीं कहीं गीतों में व्रज-भाषा तथा पूरबी बोली भी मिली है। नांचे दिये हुए उनके दोहों में नीति की शिक्षाएँ हैं। इन दोहों से पता चलता है कि यह उपदेश देने के लिये तथा प्रचार के लिये लिखे गये हैं।

सबदों में भी इन्होंने प्रचलित धार्मिक आडंबरों का खंडन किया है। इनके राम दशरथ के पुत्र राम नहीं थे निर्गुण ब्रह्म को इन्होंने राम के नाम से पुकारा है। इनके अनेक पद योग संबंधी भी हैं। इन्होंने अपनी भाषा में व्याकरण इत्यादि पर ध्यान नहीं दिया है। क्योंकि इन्हें अपनी भाषा का चमत्कार नहीं दिखाना था, जनता के सम्मुख अपना विचार



कबीर

रखना था इसीलिये इन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो लोगों में घर कर जाय।

इनकी रचनाओं में इनके शिष्यों ने बहुत इनके नाम पर गढ़कर मिला दिया है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'बीजक' है।

साखी

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप ।
निसि वासर सुख निधि लहा, अंतर प्रकटा आप ॥१॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं ।
सब अधियारा मिट गया, दीपक रेखा माहि ॥२॥

भारी कहुँ तो बहु डरूँ, हलका कहुँ तो मूठ ।
मैं का जानों राम को, नैनन कभी न दीठ ॥३॥

आस एक जिय राम को, दूजी आस निरास ।
पानी माँही घर करै, तौ भी मरै पियास ॥४॥

कहा कियों हम आय कै, कहा करेंगे जाय ।
इत के भये न उत्त के, चल में भूल गवाय ॥५॥

यह तन तो सब बन भया, कर्महिं है भये कुल्हारि ।
आप आपको काटि हैं, कहें 'कबीर' बिचारि ॥६॥

ऐसी बानी बोलिये, मनका आपा खोय ।
आपन तन शीतल करै, औरन को सुख होय ॥७॥

करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछिताय ।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय ॥८॥

उत तें कोय न आवई, जासों पूछूँ धाय ।
इत तें सब ही जात हैं, भार लदाय लदाय ॥९॥

रासि पराई राखता, खाया घर का खेत ।
औरन की परबोधता, मुख में परिया रेत ॥१०॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
एकै आखर पीउ का, पढ़े सो पंडित होय ॥११॥

ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय ।
 सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निंदा सोय ॥१२॥
 'कबिरा' हरदी पीयरी, चूना, उज्जर भाय ।
 राम सनेही यों मिलै, दूनौ बरन गँवाय ॥१३॥
 माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर ।
 करका मनका डार दे, मनका मनका फेर ॥१४॥
 जाको जेता निरमया, ताको तेता होय ।
 रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै कोय ॥१५॥
 बैद मुआ, रोगी मुआ, मुआ सकल संसार ।
 एक "कबीरा" ना मुआ, जेहि के राम अधार ॥१६॥
 हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं ।
 ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ छुड़ावै बाहिं ॥१७॥
 कुमोदिनी जलहर बसै, चंदा बसै अकास ।
 जो जाही की भावना, सो ताही के पास ॥१८॥
 मूटे मुख को मुख कहैं, मानत हैं मन मोद ।
 खलक चबैना काल का, कछु मुख में, कछु गोद ॥१९॥
 दोष पराये देखि कर, चला हसंत हसंत ।
 आपन चित्त न आवई, जिनको आदि न अंत ॥२०॥
 निंदक दूर न कीजिए, दीजै आदर मान ।
 तन मन सब निरमल करें, बकि बकि आनहिं आन ॥२१॥
 "कबिरा" वास न निदिये, जो पावों तर होय ।
 उड़िकै परै जो आँख में, खरा दूहेला होय ॥२२॥
 सिख को ऐसा चाहिए, गुरु को सरबस देय ।
 गुरु को ऐसा चाहिए, सिख का कछु न लेय ॥२३॥

पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज ।
 तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज ॥२४॥
 सिर राखे सिर जान है, मिर काटे सिर होय ।
 जैसे वाती दीप की, कटै उजेरा होय ॥२५॥
 “कबिरा” संगति साधु की, ज्यों गंधी की दास ।
 जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी दास मुदास ॥२६॥
 सुख में सुनिरन ना किया, दुख में कीया याद ।
 कह ‘कबीर’ ता दास की, कौन मुने फरियाद ॥२७॥
 नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु वान ।
 यह तीनों बहुतै नवै, चीता चोर कमान ॥२८॥
 माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं ।
 मनुवां तो दस दिसि फिरे, यह तौ सुमिरन नाहिं ॥२९॥
 साखी लाये जतन करि, इत उत अच्छर काटि ।
 कह ‘कबीर’ कब लागि जिसे, जूठी पत्तल चाटि ॥३०॥
 तन सराय, मन पाहरु, मनसा उतरी आय ।
 कोउ काहू का है नहीं, देखा ठोंकि बजाय ॥३१॥
 मूरख के समभावते, ज्ञान गाँठ को जाय ।
 कायला होय न ऊजरा, सौ मन सावुन खाय ॥३२॥
 चाह मिटी, चिंता गई, मनुवां बेपरवाह ।
 जिनको कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥३३॥
 गो धन, गज धन, वाजि धन, और रतन धन खान ।
 जो आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥३४॥
 जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन शीतल होय ।
 यह आपा तू डार दे, दया करै सब कोय ॥३५॥

खोद खाद धरती सहै, काट कूट वनराय ।
 कुटिल वचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥३६॥
 रुखा सूखा खाय करि, ठंडा पानी पीव ।
 देखि पराई चूपड़ी, क्यों ललचावे जीव ॥३७॥
 आधी औ रुखी भली, सारी तौ संताप ।
 जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करैगा पाप ॥३८॥
 प्रेम प्रीति से जो मिलै, तासो मिलिये धाय ।
 अंतर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥३९॥

सबद

मोको कहाँ ढूँढता बंदे, मैं तो तेरे पास में ।
 ना मैं छगरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरा गडास में ॥
 नहीं खाल में, नहीं पूँछ में, ना हड्डी ना मांस में ।
 ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ॥
 ना तो कौनो क्रिया करम में नहीं जोग विराग में ।
 खोजी होयह तो तुर्ते मिलिहौ पल भर की तालास में ॥
 मैं तो रहौ सहर के बाहर मेरी पुरी मवास में ।
 कहै कबीर मुनो भई साधो सब सांसों की सांस में ॥

काहे री नलनी तूं कुमिलांनी,
 तेरे ही नालि सरोवर पानी ।

जल मैं उत्पति जल में बास, जल मैं नलनी तोर निवास ।
 ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तीर हेत कहु कासनि लागि ॥
 कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मुए हमारे जान ।

हरि बिन बैल बिराने हैं ।

चार पांव दुई सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गेहे ॥
उठत बैठत ठेंगा गा परिहै तब कन मूड लुकैहै ।
फाटे नाकन टूटे कांधन कोदौ को भुस ग्यैहै ॥
खारो दिन डोलत बन महिया अजहू न पेट अघैहै ।
जन भगतन को कहो न मानो कीयो अपनी पैहै ॥
दुख सुख करत महाभ्रम वृद्धौ अनिक योनि भरसैहै ।
रतन जनम खोयो प्रभु विसर्यो इह अवसर कत पैहै ॥
भ्रमत भिरत तेलकके कपि ज्यां गति बिनु रेनि बिहैहै ।
कहत कबीर राम नाम बिनु मूड धुनै पड़ितैहै ॥

हरि बिन कौन सहाई मन का ।

मात पिता भाई सुन बनिता हितु लागो सब फन का ॥
आगै कौ किछु तुलहा बांधहु कहा भरोसा धन का ।
कहा विसासा इस मांडे का इतनुक लागे ठनका ॥
सगल धम पुत्र फल पावहु वांछहु पद रज जन का ।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु इहु मन उडन पखेरु वन का ॥

ऐसे लोगन स्यों क्या कहिए ।

हरिजम सुनहि न हरिगुन गावहि, वातनही अममान गिरायहि
जो प्रभु कीए भगति ते वाहज तिनसे मदा डगने रहिए
आप न देहि चुरु भरि पानी, तिहि निदहिं जिह गंगा आनी
बैठत उठत कुटिलता चालहि, आप गए औरनहु घालहिं
छाडि कुचर्चा आन न जानहिं, ब्रह्माहू को क्यो न मानहिं
आप गए औरनहु खोवहि, आगि लगाइ मंदिर में मोवहिं
औरन हँसत आपहहिं हूँ काने, तिनकौ देखि कबीर लजाने ।

सूरदास

[सं० १५४०-१६२०]

प्राचीन अनेक कवियों की भाँति सूरदास के विषय में भी निश्चित समय कुछ ज्ञात नहीं है। किंवदन्ती और दंत कथाओं द्वारा बहुत कुछ उनके जीवन के सम्बन्ध में जाना गया है। उनके मरण तथा जन्म की तिथियाँ निश्चित नहीं हैं। खोज के आधारपर जो अनुमान लगाया गया है वही ऊपर दिया गया है। यह बात निश्चित है कि आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क के किनारे रुकुता ग्राम में यह रहते थे। यह अंधे थे यह तो इनके नाम से प्रकट होता है। किन्तु इनकी रचनाओं में अनेक ऐसे वर्णन आये हैं जिनसे यही कहा जा सकता है कि यह जन्म से अंधे नहीं थे। रंगों का वर्णन, पुरुषों का वर्णन, वस्त्रों का वर्णन जैसा इन्होंने किया है वैसा कोई जन्म से अन्धा नहीं कर सकता। इनकी भेंट वल्लभाचार्य से हो गयी। उनके साथ यह वृन्दावन चले आये। वहीं भगवान् की भक्ति में तल्लीन होकर पद बनाने और गाते। कहा जाता है इन्होंने सवा लाख पद बनाये किन्तु अब कुछ सहस्र पद ही मिलते हैं। उन पदों का संग्रह सूर सागर के नाम से विख्यात है। इनके पद भागवत् के आधार पर बने हैं। गोस्वामी विठ्ठलनाथ ने जो अष्टछाप की स्थापना की उसमें पहले कवि सूरदास ही हैं।

यों तो पहले भी कवि हो गये हैं किन्तु साहित्यिक सुषमा तथा सौंदर्य की दृष्टि से यदि देखा जाय तो सूर ही पहले हिन्दी के कवि हैं। इनकी भाषा प्रांजल, मँजी ब्रजभाषा है। इनकी रचना में मधुरता, सरलता और कोमलता पायी जाती है। सूरदास ने वात्सल्य, प्रेम, विरह आदि भावों को अपनी रचना में बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। यद्यपि

पूतनाबध, कालिया-मर्दन, गोवर्धन-लीला, कंस-बध का वर्णन भी इन्होंने किया और इनके द्वारा कृष्ण के लोक नायक होने के पक्ष को भी दिखाया है किन्तु इनकी विशिष्टता भगवान् कृष्ण की भक्ति का मथुर पक्ष ही है। इन्होंने कृष्ण के लोक नायक पक्ष को नहीं ग्रहण किया। कृष्ण के बाल्य जीवन का जितना सहृदय, मनोवैज्ञानिक, तथा स्वाभाविक वर्णन इन्होंने किया है, वैसी हिन्दी में और कोई कर्मा नहीं कर सका। प्रेम का वियोग तथा संयोग दोनों अवस्थाओं में इन्होंने मार्मिक वर्णन किया है। इन्होंने कृष्ण को मथुरिसामय मरस भगवान् का अवतार माना और इसी दृष्टि से उनका वर्णन किया है। इनकी भक्ति सखा भाव की थी। सूर के कृष्ण भागवत के कृष्ण हैं, गीता के नहीं। अमर गीत में उन्होंने सगुण भक्ति का प्रौढ़ता से समर्थन किया है।

नीचे के अवतरणों में नौ पद त्रिनय के हैं। इसके पश्चात् आठ पद उनकी बाललीला के हैं। फिर श्याम के सौंदर्य का वर्णन है। अंत में वे मार्मिक और हृदय-ग्राही पद हैं जिनके द्वारा गोपियों के मन के वह भाव व्यक्त किये गये हैं जो श्याम के वियोग में उठे हैं।

त्रिनय

चरन कमल बंदौ हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंगै, अंधै कौ सब कलु दरसाई ॥

बहिरो सुनै, मूक पुनि बोले, रंक चले मिर छत्र धराई ।

“सूरदास” स्वामी करुनामय बार बार बंदौ तेहि पाई ॥

सबै दिन एकै से नहि जात ।

सुमिरन ध्यान कियौ करु हरि कौ जब लगि तन कुसलात ।

कबहुँ कमला चपल पाइके टेढ़े टेढ़े जात ।

कबहुँक मग मग धूरि बटोरत भोजन कौ बिलखात ॥१॥

या देही को गरब दावरो तदपि फिरत इतरात ।
 वाद विवाद सबै दिन बीते खेलत ही अरु खात ॥
 है बड, हौ हू बहुत कहावत, सूधे कहत न बात ।
 जोग न जुक्ति, ध्यान नहिं पूजा, वृद्ध भये अकुलात ॥
 बालापन खेलत ही खोयौ तरुनापन अलसात ।
 “सूरदास” औसर के बीते रहि है पुनि पछितात ॥२॥

हौ हरि सब पतितन को नायक ।
 को करि सकै बरावरि मेरी और नहीं कोउ लायक ॥
 जैसो तुम अजामेलि को दीनो सोइ पटो लिखि पाऊँ ।
 तौ बिस्वास होइ मन मेरे औरों पतित बुलाऊँ ॥
 सिमिटे जहां जहां सब कोऊ आय जुरे इक ठोर ।
 अब के इतने आन मिलाऊँ बेर दूसरी और ॥
 होडाहोडी मन हुलाम करि करे पाप भरि पेट ।
 सबै पतित पायन तर डारों इहै हमारी भेट ॥
 बहुत भरोसो जानि तुम्हारो अब कीन्हें भरि भांडो ।
 लीजै नाथ निबेरि तुरंतहि सूर पतित को टांडो ॥३॥

प्रभु मैं सब पतितन को टीकौ ।
 और पतित सब द्यौस चारि के मैं तो जन्मत ही कौ ॥
 बधिक अजामिलि गनिका तारी और पूतना ही कौ ।
 मोहि छांडि तुम और उघारे मिटै मूल कयां जी कौ ॥
 कोउ न समरथ अब करिबे को खैचि कहत हौ लीकौ ।
 मरियत लाज सूर पतितनि में कहत सबन में नीकौ ॥४॥

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो ।
 समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपनेपनहि करो ॥
 इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ॥

यह दुविधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो ॥
 एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो ।
 जब मिलि कै दोउ एक बरन भए सुरसरि नाम परो ॥
 एक जीव इक ब्रह्म कहावत “सूर स्याम” भगरो ।
 अब की बेर मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो ॥१॥

मेरो मन अनत कहां सुख पावै ।
 जैसे उड़ि जहाज की पाँछ फिरि जहाज पर आवै ॥
 कमल नैन काँ छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
 परम गंग को छाँड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै ॥
 जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै ।
 “सूरदास” प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥६॥

तुम मेरी राखौ लाज हरी ।
 तुम जानत सब अंतरजामी करनी कलु न करी ॥
 औगुन में ते विसरत नाहीं पल छिन घरी घरी ।
 सब प्रपंच की पोट बांधि कर अपने सीस धरी ॥
 दारा, सुत धन, मोह लिये हौ सुधि बुधि, सब विसरी ।
 “सूर” पतित को बेगि उधारौ अब मेरी नावभरी ॥७॥

तजौ मन हरि विमुखन को संग ।
 जिनके संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भंग ॥
 कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग ।
 कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान नहाये गंग ॥
 खर कौ कहा अरगजा लेपन, मरकट भूपन अंग ।
 गज को कहा नहाये सरिता बहुरि धरै खहि अंग ॥
 पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निखंग ।
 “सूरदास” खल, कारो कामरि चढ़ै न दूजौ रंग ॥८॥

आजु हौँ एक एक करि टरिहौँ ।

कै हमहीं, के तुमहीं माधव अपुन भरोसै लरिहौँ ॥

हौँ तौ पतित सात पीढ़िन को पचितै ह्वै निसतरिहौँ ।

अब हौँ उधरि नचन चाहत हौँ तुम्हें बिरद बिनु करिहौँ ॥

कत अपनी परतीति नसावन मै पायौ हिर हीरा ।

“सूर” पतित तब हौँ लौँ उठि है जब हंसि दैहौ बीरा ॥६॥

बाल लीला

भीतर तै बाहिर लौँ आवत ।

घर आंगन अति चलन सुगम भयौ देहरी में अटकावत ॥

गिरि-गिरि परत जात नहिं उलंघी, अति म्रम होत, न धावत ।

अहुठ पैग बसुधा सब कोन्हीं धाम अवधि बिरमावत ॥

मनहीं मन बलवीर वहत है ऐसे रंग बनावत ।

“सूरदास” प्रभु अग्नित महिमा भगतन के मन भावत ॥१०॥

भैया कबहिं बढ़ेगी चोटी ।

किती बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी ॥

तू जो कहति बल की बैनी ज्यों वैदे लौँगी मोटी ।

काढ़त गुहृत न्हावावत ओझत नागिनि सी भुई लोटी ॥

काचो दूध पिआवत पचि पचि देत न माखन रोटी ।

“सूर” स्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥११॥

सोभित कर नवनीत लिये ।

घुटुरुन चलत, रेणु तन मंडित, मुख दधि लेप किये ॥

चारु कपोल लोल लोचन गोगोचन निलक दिये ।

लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहि पिये ॥

कंठुला कंठ वज्र, केहरि नख राजत रुचिर हिये ।

धन्य “सूर” एको पल या मुख का सत कल्प जिये ॥१२॥

किहि बिधि करि कान्है समुझैहौ ।

मैं ही भूलि चंद दिखरायो ताहि कहत मोहिं दै, मैं खैहों ॥
 अनहोनी कहूँ होत कन्हैया देखी सुनी न बात ।
 यह तौ आहि खिलौना सब को खान कहत तेहि तात ॥
 यहै दंत लवनी नित मो को छिन छिन सांध सबारे ।
 बार बार तुम माखन मांगत देऊँ कहाँ ते प्यारे ॥
 देखत रहौ खिलौना चंदा आरि न करो कन्हई ।
 “सूर” म्याम लियो महारि जसोदा नंदहिं कहत बुझाई ॥१३॥

हरि अपने आगे कछु गावत ।

तनक तनक चरनन साँ नाचत मनहीं मनहिं रिझावत ॥
 बाँह उचाइ काजरी, धौरी गैयन टेरि बुलावत ।
 कबहुँक बाबा नंद बुलावत कबहुँक घर में आवत ॥
 माखन तनक आपने कर लै तनक वदन मैं नावत ।
 कबहुँ चितै प्रतिबिम्ब खंभ मैं लवनी लिये खवावत ॥
 दुरि देखत जसुमति यह लीला हरष अनंद बढ़ावत ।
 “सूर” म्याम के बाल चरित यै नित देखत मन भावत ॥१४॥

जेंवत कान्ह नंद इक ठौरे ।

कछुक खात लपटात दुहूँ कर बालक है अति भोरे ॥
 बड़ा कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टुक टोरे ।
 तोछन लगी नयन भरि आये रोवत बाहर दौरे ॥
 फूकति बदन रोहिनी माता लिये लगाय अंकोरे ।
 “सूर” म्याम कौ मधुर कौर दे कीन्हें सांत निहोरे ॥१५॥

मोहन कहे न उलिलौ माटी ।

बार बार अनरुचि उपजावति महारि हाथ लिये सांटी ।
 महतारी कौ कह्यौ न मानत कपट चतुरई पगिपाटी

बड़ी बार भई लोचन उघरे भ्रम जामिनि नहीं फाटी ।
“सूरदास” नंदरानि भ्रमित भई कहत न मीठी खाटी ॥१६॥

कन्हैया तू नहिं मोहि डगत ।
षटरस धरे छोडि, कत पर घर चोरी करि करि खात ॥
बकति बकति तोसौ पचि हारी नैकहु लाज न आई ।
व्रत परगन सरदार महर, तू ताकी करत नन्हाई ॥
पूत सपूत भैया कुल मेरौ अब मैं जानी बात ।
“सूर” स्याम अबलौ तोहि बकस्यौ तोरी जानी घात ॥१७॥

श्याम सौंदर्य

हरि मुख किधौ मोहनी माई ।
बोलत बचन मंत्र सौ लागत गति मति जात भुलाई ॥
कुटिल अलक राजत भ्रुव ऊपर जह तह रहि बगराई ।
स्याम फांसि मन करण्यो हमरी अब समझी चतुराई ॥
कुंडल ललित कपोलन भलकत उनकी गति मैं पाई ।
“सूर” स्याम जुवती मन मोहति जे संग करत सहाई ॥१८॥

विधातहि चूक प्ररी मैं जानी ।
आजु गोविंदहि देखि देखि हौं इहै समुझि पछितानी ॥
रचि पचि सोचि संवारि सकल अंग चतुर चतुरई ठानी ।
दीठि न दई रोम रोमनि प्रति इतनिहित कला नसानी ॥
कहा करौ अनि सुख दुइ नैना उमंगि चलत भरि पानी ।
“सूर” सुमेर समाइ कहाँ धौ बुधि बासनी पुरानी ॥१९॥

मुरली तऊ गोपालहि भावति ।
सुन री सखी जदपि नंदनंदहि नाना भाँति नचावति ॥
राखति एक पाय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति ।

कोमल अंग आपु आज्ञागुरु कटि टेढ़ी ह्वै जावति ॥
 अति आधीन सुजान कनौड़े गिरधर नारि नवावति ।
 आपुन पौढि अधर सेज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति ।
 भृकुटी कुटिल फरक नासा पुट हम पर कोपि कुपावति ।
 “सूर” प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुं सीस डोलावति ॥२०॥

मुरली अधर सजी बलबीर ।
 नाद सुनि बनिता बिमोह घर बिसारे चीर ॥
 नैन मूँदि, समाधि धरि, खग रहे ज्यौ मुनि धीर ।
 मोल नहिं द्रुम, लता, बिथकी मंद गध समीर ॥
 धेनु तृन तजि, रहे ठाढ़े बच्छ तजि मुख छीर ।
 “सूर” मुरली नाद सुनि थकि रहत जमुना नीर ॥२१॥

श्याम का वियोग

अखियां हरि दरसन को भूखी ।
 कैसे रहै रूप रस रांची ये बतियां सुनि सूखी ॥
 अवधि गनत इकटक मग जोवत तव एती नहिं भूखी ।
 अब इन जोग संदेसनि ऊधौ, अति अकुलानी दूखी ॥
 बारक वह मुख फेरि दिखावौ दुहि पथ पियत पतूमी ।
 “सूर” सिकत हठि नाव चलावौ जे सरिता है सूखी ॥२२॥

ऊधौ, मन नाहीं दस बीस ।
 एक हुतौ सो गयो स्याम संग को आराधै ईस ॥
 भई अति सिथिल सबै माधवबिनु जथा देह बिनु सीस ।
 स्वासा अटक रहै आसा लगि जीवहि कोंटि बरीस ॥
 तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के सकल जोग के ईस ।
 “सूरदास” करि रस की बतियां पुरवौ मन जगदीश ॥२३॥

ऊधो, अब नहिं स्याम हमारे ।

मधुवन बसत बदलि से गवै माधव मधुप तिहारे ॥

इतनिहिं दूर भये कलु औरै जोहि जोहि मगु हारे ।

कपटी कुटिल काक काकिल ज्यों अंत भए उडि न्यारे ॥

रसल भवर जाय स्वारथ हित प्रीतम चितहि बिसारे ।

“सूरदास” उनसौ का कहियै जे नतहूँ मन कारे ॥२४॥

बनु गुपाल बैरिन भई कुंजै ।

तिब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजै ॥

बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलै अलि गुंजै ।

पवन, पानि, घनसागर, मजीवनि दधि सुन किरन भानु भई भुंजै ॥

ये ऊधो कहियो माधव सों विरह करद कर भागन लुंजै ।

“सूरदास” प्रभु को मग जोवत अखियाँ भई बगन ज्यों गुंजै ॥२५॥

दूर करहु बीना कर धरिवो ।

माहे मृग नाहीं रथ हांक्यो नाहिन होत चंद्र को परिबो ।

जब तै बिछरे कमल नयन सखि रहत न नयन नीर को गरिवो ॥

सीतल चंद अग्नि सम लागत कहिए धीर कौन विधि धरिवो ।

“सूरदास” प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब सूठो जतननि को करिवो ॥२६॥

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।

सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब ते म्याम सिधारे ॥

दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भए कारे ।

कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारे ॥

“सूरदास” प्रभु अंबु बढ्यो है गोकुल लेहु उवारे ।

कह लो कहाँ म्याम घन सुन्दर बिकल होत अति भारे ॥२७॥

जायसी

[सं० १६४६-१६६८]

सलिक सुहम्माद जायसी जायस (जायस) के रहने वाले थे । ये सूफीमत के फकीर थे । ऊपर लो तिथि इनके जन्म तथा मरण की दी हुई है वह निश्चित नहीं है किन्तु विद्वानों ने ऐसा ही माना है । यह शेरशाह के समय में थे क्योंकि इन्होंने अपने ग्रंथ में शेरशाह की वंदना की है । उस समय शेरशाह दिल्ली के सम्राट् थे । इनकी लिखी तीन पुस्तकें मिलती हैं—पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम । पद्मावत प्रबंध काव्य है । इसमें सिंहल द्वीप के राजा रतनसेन तथा चित्तौड़ की रानी पद्मिनी का प्रेम-वर्णन है । बाहर से तो कथा में मानवी प्रेम का वर्णन है किन्तु जायसी ने आत्मा तथा परमात्मा के प्रति प्रेम का वर्णन किया है । कथा का आधार ऐतिहासिक है किन्तु कवि ने उसमें कल्पना मिलाकर कथा बनायी है । उस युग में इस प्रकार की कथाएँ लिखी नहीं थी । ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं । ऐसे कवियों को प्रेममार्गी सूफी कवि कहते हैं । इस प्रकार के कवि सांसारिक प्रेम के बहाने ईश्वरस्थ प्रेम का वर्णन करते हैं ।

यह कथा दोहों और चौपाइयों में लिखी है । इसकी भाषा भी ठेठ अवधी है । जायसी ने यह कथा अवधी में लिखकर उसे साहित्यिक रूप दिया और वह इस योग्य बनी कि आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने इसीमें रामचरित-मायस लिखा । पद्मावत की कथा में कथा के सब गुण हैं । प्रेम, अज्ञा और भक्ति के साथ-साथ लोक-हित की भावनाएँ वीर, शौर्य आदि भी मौजूद हैं । कविता बहुत मधुर और मर्मस्पर्शिका है ।

यहाँ गोरा-बादल की कथा का अंश दिया जा रहा है । गोरा राजा रतनसेन का सामंत था । बादल उसका भतीजा था । जायसी ने उसे पुत्र माना है । गोरा बादल छल से अलाउद्दीन के गिवास स्थान पहुँचे और संदी राजा रतनसेन को छुड़ाया । गोरा बादल की वीरता का जायसी ने बढ़ा अंजपूर्ण वर्णन किया है ।

गोगखा बादल की वीरता

पद्मावति के भेस लोहारू, निकसि काटि वदि कीन्ह जोहारू
 उठा कोमि जस छूटा राजा, चढ़ा तुरंग मिंध अस गाजा ।
 गारा बादल खांडि कांटे, निकसि कुंवर चढ़ि चढ़ि भए टाढ़े ॥
 लेई राजा चितउर कह चले, छूटेउ सिंघ गिरिग खलभले ।
 चढ़ा साहि, चढ़ि लाग गोहारी, कटक असूझ परी जग कारी ॥
 फिरि गोरा बादल सौ कहा, गहन छूटि पुनि चाहे गहा ।
 चहुँ दिसि आवै लोपत भानू, अब इहै, गोई, इहै मैदानू ॥
 तुई अब राजहि लेइ चलु गारा, हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा

आजु खडग चौगान गहि, करौं सीस रिपु गोई ।

खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत मंह हाई ।

तब आगमन होई गोरा मिला, तुइ राजाह लेइ चलु बादला ।
 पिता मरै जो संकरे साथी, मीचु न देइ पूत के साथी ॥
 मै अब आउ भरी औ भूँजी, का पछिताव आउ जौ पूजी ।
 बहुतन्ह मारि मरौं जौ जूझी, तुम जनि रोएहु तौं मन बूझी ॥
 कुंवर सहस संग गोरा लोन्हें, और वीर बादल संग कीन्हें ।
 गोरहि समदि मेव अस गाजा, चला लिए आगे करि राजा ॥
 गोरा उलटि खेत भा टाढ़ा, पूरुप देखि चाव मन बाढ़ा ।

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि सांझ ।

परति आव जग कारी, होति आव दिन सांझ ॥

फिरि आगे गोरा तब हांका, खेलौं, करौं आज रन सका ।
 हौं कहिए धौलागिरि गोरा, टरौं न टारे, अंग न मोरा ॥

ओनई घटा चहुँ दिसि आई, छूटहि बान मेघ भरि लाई ।
 लोलै नाहि देव भस आदी, पहुँचे आइ तुरुक सब वादी ॥
 हाथन्ह गहे खडग हरद्वानी, चमकहि सेल बीजु के बानी ।
 सोभ बान जस आवहि गाजा, बासुकि डरै सीस जनु बाजा ॥
 नेजा उठे डरै मन इंदू, आइ न बाज जानि के हिंदू ।
 गोरै साथ लीन्ह सब साथी, जस मैमंत सूड बिनु हाथी ॥
 सब मिलि पहिली उठौनी कीन्ही, आवत आइ हाँकि रन दीन्हीं ।

रुंड मुंड अब टूटहि स्यो बखतर औ कूंड ।

तुरय हाहि बिनु कांधे, हस्ति होहि बिनु सूड ॥

भई बगमेल, सेल घनघोरा, और गज पेल, अकेल सो गोरा ।
 सहस कुंवर सहसौ सत बांधा, भार पहार जूझ कर कांधा ॥
 लगे मरै गोरा के आगे, बाग न मोर घाव मुख लागे ।
 जैसे पतंग आगि धमि लेई, एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
 टूटहि सीस, अधर धर मारै, लोअहि कंधहि कंध निरारै ।
 कोई परिहिं रुहिर होई राते, कोई घायल घूमहि माते ॥
 कोई खुरखेह गए भरि भोगी, भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी ।

घरी एक भारत भा. भा असवारन्ह मेल ।

जूझि कुंवर सब निब रे, गोरा रहा अकेल ॥

गोरै देख साथि सब जूझा, आपन काल नियर भा, बूझा ।
 कोपि सिंघ सामुंह रन मेला, लाखन्ह सो नहिं मरै अकेला ॥
 लेई हाँकि हस्तिन्ह के ठटा, जैसे पवन बिदारै घटा ।
 जेहि सिर देह कोपि करवारु, स्यों घाड़े टूटे असवारु ॥
 लोटहि सीस कबंध निनारे, माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ।
 खेलि फाग सेंदुर छिरकावा, चांचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
 हस्ती घोड़ धाइ जी धूका, ताहि किन्ह सो रुधिर भूझा ।

भई अज्ञा सुलतानी, “वेगि करहु एहि हाथ ।

रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ ।”

सबै कटक मिलि गोरहि छेका, गूजत सिंघ जाइ नहिं टेका ।
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा, पलटि सिंघ तेहि ठांव न आवा ॥
तुरुक बोलावहिं बोले बांहां, गोरे मीचु धरी जिउ माहां ।
मुए पुनि जूझि जाज जगदेऊ, जियत न रहा जगत महुँ केऊ ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला, सिंघ के मोंछ हाथ को मेला ।
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा, मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख सौहहि दीठी, जो लगि जियै देइ नहिं पीठी ।

रतनसेन जी बांधा, मसिं गोरा के गात ।

जौ लगि रुधिर न धोवौ, तो लगि हांड न रात ॥

मारेसि लाग पेट महं घँसी, काढ़ेसि हुमुकि आति भुईं खसी

भांट कहा, ध्वनि गोरा, तू भा रावन राव ।

आंति समेटि बांधि कै, तुरय देत है पाव ॥

कहेसि अंत अब भा मुई परना, अंत त खसे खेह सिर भरना ।
कहि के गरजि सिंघ अस धावा, सरजा सारदूल पढ़ं आवा ॥
सरजै लीन्ह सांग पर घाऊ, परा खडग जनु परा निहाऊ ।
बज्र के सांग बज्र के डांडा, उठी आगि तस बाजा खांडा ॥
मानहु वज्र वज्र सौ बाजा, सब ही कहा परी अब गाजा ॥
दूसर खडग कंध पर दीन्हा, सर जैओहि ओढ़न पर लीन्हा ।
तीसर खडग कूंड पर लावा, कांध गुरुज हुत, घाव न आवा ॥

तस मारा हठि गोरै, उठीं बज्र के आगि ।

को नियरे नहि आवे सिंघ सदूरहि लागि ॥

तब सरजा कोपा बरिवंडा, जनहु सदूर केर भुजदंडा ।
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा, जानहु परी टूटि सिर गाजा ॥

ठांठर दूट, फूट सिर तासू. ख्यो सुमेरु जनु दूट अकासू ।
धमकि उठा सब सरग पतारु, फिरि गई दीठि, फिरा संसारु ॥
भई परलय अस सबही जाना, काढ़ा खडग सरग नियराना ।
तस मारेसि स्यों घोड़े काटा, धरती फाटि, सेस फन फाटा ॥

गोरा परा खेत मंह, सुर पहुँचावा पान ।

बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान ॥

— — —

मीरा

[स० १५७३-१६०३]

मीराबाई जोधपुर राज्य के प्रतिष्ठाता राव जोधार्जा की प्रपौत्री तथा रत्नसिंह राठौर की पुत्री थीं। इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था। बचपन से ही इनकी भक्ति कृष्ण की ओर थी और उनकी पूजा-अर्चना में ही ये लीन रहा करती थीं। विवाह के थोड़े ही दिनों बाद इनके पति का परलोकवास हो गया। इनके पश्चात्

इनकी भक्ति-भावना और भी बढ़ गई। अपने परिवार के लोगों की भी परवा न करके ये सदा साधु-सन्तों के साथ मंदिर में भगवान कृष्ण की पूजा तथा अर्चना किया करती थीं। मूर्ति के सामने भक्ति में विह्वल होकर नाचती थीं। इनका यह आचरण राजकुल को अच्छा नहीं लगता था और इन्हें तप देने की भी चेष्टा की गई। किन्तु कहा जाता है कि इन पर विर का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। घर-वालों के व्यवहार से तंग आकर वे वृन्दावन तथा



मीराबाई
हारका चली गई और वहाँ मन्दिरों में कान्तन करती थीं। वहाँ

इनका सम्मान देवियों का-सा होता था। किंवदन्ती है कि इन्होंने तुलसीदास जी को एक पत्र लिख कर पूछा था कि वरवालों का ऐसा व्यवहार है, क्या करना चाहिए। अब तक मीराबाई के जन्म-मरण की तिथि का जो पता लगा है उससे यह घटना असत्य-सा जान पड़ती है, क्योंकि मीराबाई की मृत्यु संवत् १६०३ में हो चुकी थी।

इनकी कविता की भाषा ब्रज है जिसमें स्थल-स्थल पर गुजराती तथा राजस्थानी का भी समावेश है। इनके चार ग्रन्थों का नाम मिलता है। ये सब गेय पद हैं। इनकी भक्ति मधुरभाव की है। इन्होंने भगवान् को अपने पति के रूप में माना है। इनके पदों में भक्ति की तल्लीनता विशेष-रूप से दिखाई देती है। इन्होंने वियोग अंगार का बड़ा मार्मिक तथा मधुर वर्णन किया है। ये सचमुच कृष्ण के प्रेम में दिवानी थीं और यह दिवानापन इनके प्रत्येक पद में झलकता है। इनकी गणना भारत के प्रधान भक्तों में है। इनकी कविताओं के संग्रह-मात्र मिलते हैं।

[१]

बसो मेरे नैनन में नंदलाल ।

मोहनी मूरति सांवरी सूरति नैना बने बिसाल ।

अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजंती माल ॥

छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल ।

मीरा प्रभु संनन सुखदाई भगत बछल गोपाल ॥

[२]

मन रे परसि हरि के चरन ।

सुभग शीतल कंवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन ।

जिन चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ॥

जिन चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरन ।

जिन चरण ब्रह्मांड मेढ्यों, नख सिख सिरी धरन ॥

जिन चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम धरन ।
जिन चरण काली नाग नाथ्यों, गोप लीला करन ॥
जिन चरण गोवरधन धाख्यो, इन्द्र को गरव हरन ।
दासि “मीरा” लाल गिरधर, अगम तारनतरन ॥

[३]

मैं गोविन्द के गुन गाना ।
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्यो कहं जाना ।
राना भेजा जहर पियाला, अमरित करि पी जाना ॥
डिबिया में भेज्या जु भुजंगम, सालिग्राम करि जाना ।
“मीरा” तो अब प्रेमदिवानी, साँवलिया बर पाना ॥

[४]

हरि तुम हरो जन की भीर ।
द्रौपदी की लाज राख्यो तुम बढ़ायो चीर ।
भक्त कारन रूप नरहरि धख्यो आप सरीर ॥
हरिनकस्यप मारि लीन्हो धख्यो नाहिन धीर ।
बूडते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर ॥
दास “मीरा” लाल गिरधर दुख जहां तहँ पीर ।

[५]

आली म्हाने लागे वृन्दावन नीको ।
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसन गोविन्द जी को ।
निरमल नीर वहत जमुना में भोजन दूध दही को ॥
रतन सिंघासन आप बिराजे मुकुट धरयो तुलसी को ।
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका सबद सुनत मुगली को ॥
“मीरा” के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको ।

[६]

म्हांनं चाकर राखो जी, म्हांनं चाकर राखो जी ।
 चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं ॥
 बिन्द्रावन की कुंजगलिन में, तेरी लीला गासूं ।
 चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरन पाऊं खरची ।
 भाव भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी ॥
 मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गले बैजन्ती माला ।
 बिन्द्रावन में धेनु चरावे, मोहन मुरलीवाला ॥
 हरे हरे नित वन्न बनाऊं, बिच बिच राखूं क्यारी ।
 सांवरिया के दरसन पाऊं, बिच बिच राखूं क्यारी ॥
 सांवरिया के दरसन पाऊं, पहर कुसुम्भी सारी ।
 जोगी आया जोग करन कूं, तप करने संन्यासी ॥
 हरी भजन कूं साधू आया, बिन्द्रावन का वासी ।
 "मीरा" के प्रभु गहिर गंभीरा सदा रहो जो, धीरा ॥
 आधी रात प्रभु दरसन दैहै, प्रेम नदी के तीरा ।

[७]

माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल ।
 कोई कहै छाने कोई कहै गोरो लियो री आमोलिक मोल ।
 या ही कूं सब लोग जानत है लिये री आँखी खोल ॥
 मीरा कूं प्रभु दरसन दीज्यौ पूरब जनम को कोल ।

[८]

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
 जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥
 छांड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई ।
 संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खाई ॥

अंमुवन जल सीचि प्रेम वेलि वोई ।
 अब तो वेलि फैलि गई आनंद फल होई ॥
 भगति देखि राजि हुई जगन देखि रोई ।
 दासी मीरा लाल गिरिधर तारो अब मोई ॥

[६]

चलो मन गंग जमना तीर ।
 गंगा जमना निरमल पानी, सीतल होत सरीर ।
 बंसी बजावत गावत कान्हा, संग लिया बलवीर ॥
 मोर मुकुट पीतांबर सोहै, कुंडल भलकत हीर ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंबल पै सीर ॥
 जोगी मतजा, मतजा मतजा, पांव परं मैं चेनी तेरी ।
 प्रेम भगति को पैड़ों है न्यारों, हमकूं गैल बनाजा ॥
 अगर चंदन की चिना बनाऊं, अपने हाथ जलाजा ।
 जल बल भई भस्म की टेरी, अपने अंग लगाजा ॥
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर जोत पै जोत मिलाजा ।

गोस्वामी तुलसीदास—वन-गमन

[सं० १५५४-१६८०]

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में सं० १५५४ में हुआ था । कुछ लोगों का ऐसा मत है कि ये सोरों में पैदा हुए थे किन्तु अभी तक जो प्रमाण मिले हैं उनसे पहला मत ही अधिक ठीक जान पड़ता है । इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलमी था । कहा जाता है कि ये मूल नक्षत्र में पैदा हुए थे अतः इनके पिता ने इन्हें त्याग दिया । बाबा नरहरिदास ने इन्हें पाला-पोसा और शिक्षा-दीक्षा दी । ये अपनी पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर बड़ी नदी पार कर उससे जाकर मिले । स्त्री ने इनकी ताड़ना की जिसे इन्हें विरक्ति हो गई और ये काशी चले आये । इन्होंने बहुत तीर्थाटन किया था और देश-देशान्तर में घूमे थे । संवत् १६३१ में इन्होंने अपना ग्रन्थ रामचरितमानस आरम्भ किया और दो साल सात महीने में उसे समाप्त किया । इसके अतिरिक्त इन्होंने विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामलला-नहट्ट, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली लिखी है । विनयपत्रिका तथा रामचरितमानस के कुछ अंश काशी में लिखे गये थे । ये रामानन्द सम्प्रदाय के स्मार्त वैष्णव थे । जीवन के अन्तिम भाग में ये काशी में ही रहते थे और यहीं संवत् १६८० में इनकी मृत्यु हुई ।

तुलसीदास ने भारत के अनेक भागों में भ्रमण करके मनुष्य-समाज का तथा लौकिक ज्ञान बहुत प्राप्त किया था, इसके अतिरिक्त ये अनेक भाषाओं के पंडित थे और वेद-शास्त्र का भी ज्ञान रखते थे । इनके

समय में कविता की दो भाषाएँ प्रचलित थीं—अवधी और ब्रज । इनका दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था । अवधी भाषा का इन्होंने बड़ा संस्कार किया और उसीमें रामचरितमानस लिखा । इनके समय में कविता लिखने की पांच शैलियाँ थीं । दोहा-चौपाई, कवित्त, सवैया, गीत, दोहा-छप्पय । इन्होंने पाँचों शैलियों को अपनाया और सबमें कमाल कर दिया । दोहा-चौपाई में इन्होंने भगवान राम का कथा रामचरितमानस में लिखी, कवित्त, सवैया में कवितावली लिखी । रामचरितमानस जिस ढंग का ग्रन्थ है उसे प्रबन्ध-काव्य कहते हैं । प्रबन्ध-काव्य में जिन गुणों की आवश्यकता होती है उन सबका इसमें सुन्दर ढंग से निर्वह किया गया है । कथा वर्णन की शैली, संवाद, भावों की व्यञ्जना सब ठीक नपे-तुले रखे गये हैं । तुलसीदास राम के भक्त थे । रामचरितमानस भक्ति का अनूठा ग्रन्थ है । भाषा तथा साहित्यिक सुन्दरता भी इसकी अपूर्व है । जहाँ जिस रस का वर्णन है वैसी ही भाषा है । यह ग्रन्थ धार्मिक, सामाजिक शिक्षा नीति और कर्त्तव्य-पालन का ज्ञानकोष है । भक्ति के साथ साथ इस ग्रन्थ में लोकपक्ष का भी सुन्दर समन्वय है । भगवान रामचन्द्र को इन्होंने लोकनायक माना है जो संसार से बुराई हटाकर, दुष्टों का नाश कर सुख और शान्ति स्थापित करते हैं । इस पुस्तक में सरल से सरल और गंभीर से गंभीर भाव मिलते हैं । अपढ़ और विद्वान दोनों को इस ग्रन्थ में समान रस मिलता है । इस ग्रन्थ द्वारा शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों के भगवों को मिटाने की चेष्टा की गई है । यह ग्रन्थ भारतवर्ष में बहुत लोकप्रिय है । इसकी चौपाइयाँ लोगों की जबान पर रहती हैं । सभी दृष्टियों से तुलसीदास हिन्दी के बेजोड़ कवि हैं । इन्होंने इस ग्रन्थ के द्वारा हिन्दू धर्म की बड़ी रक्षा और सेवा की है । सबसे बड़े साहित्यकार तो ये थे ही ।

नीचे पहला अवतरण विनय से है, जिसमें तुलसीदास के आंतरिक भाव प्रकट होते हैं, कवितावली से दिया गया है । यह उस समय

की घटना है जब राम को वनवान की आज्ञा दे दी गई है और वे सीताजी तथा लक्ष्मण के साथ वन को चल रहे हैं। राजकुमार और राजकुमारी को वन में क्या कष्ट होता है, कैसे-कैसे लोग मिलते हैं, लोगों की इनके प्रति कितनी भक्ति थी, वन के निवासियों को इन्हें देखकर कितना कुतूहल होता था सबका सुन्दर चित्र तुलसीदास ने खींचा है। भाषा मधुर तथा सरल है इसके बाद का अंश रामचरितमानस से लिया गया है। यह उस समय की घटना है जब भगवान रामचन्द्र राजा जनक के यहां धनुष तोड़ने के लिए गये हैं। सब राजा की उपस्थिति है, बन्दीजनों ने सबका परिचय दिया है। राम को सुकुमार देखकर लोगों के हृदय में संशय होता है। सारा वर्णन बड़ा सजीव है। भाषा की मधुरता, स्वाभाविक अलंकार और मानव-स्वभाव का चित्रण इस अवतरण में सुन्दरता से व्यक्त किये गये हैं, साहित्य की कोमल भावनाएं इसमें स्पष्ट हैं। इसके पश्चात् प्राकृतिक दृश्य वर्षा तथा शरद् ऋतु का है। वर्णन बहुत सजीव तथा सुन्दर है।

कलिं नाम काम तरु राम को ।

दलनिहार दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ।
 नाम लेत दाहिनों होत मम बाम बिधाता बाम को ॥
 कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूखे नाम को ।
 भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम को ॥
 तुलसी जग जानिपत नाम ते सोच न कुच मुकाम को ।

सेइए मुसाहिब राम सो ।

सुखद, सुसील, सुजान, सूर, सुचि, सुन्दर कोटिक काम सो ।
 सारद सेस साधु महिमा कहैं, गुन गन-गायक साम सो ॥
 सुमिरि सप्रेम नाम जासो रति चाहत चन्द्र-ललाम सो ।
 गमन विदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो ॥



गोस्वामी तुलसीदास

साखी ताको विदित विभीषण बैठो है अविचल धाम सो ।
 टहल सहज जन महल महल जागत चारों जुग जाम सो ॥
 देखत दांष न खीभत रीभत सुनि सेवक गुन ग्राम सो ।
 जाके भजे तिलोक-तिलक भये त्रिजग-जोनि तनु ताम सो ॥
 तुलसी ऐसे प्रभुहि भजैजो न, ताहि विधाता वाम सो ।

विम्वास एक राम नाम को

मानत नहिं परतीति अनन एसोइ सुभाव मन वाम को ॥
 पढ़िबो पञ्चों न छठी छ मत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को ।
 व्रत, तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तक छाम को ॥
 करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को ।
 ज्ञान, विराग, जोग, जप, तप, मम, लोभ, मोह, कोह, काम को ॥
 सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक-गुन-गाम को ।
 बैठे नाम-काम तरु तर डर कौन घोर घन घाम को ॥
 को जाने को जैहै जमपुर का सुर पुर परधाम को ।
 तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥

है प्रभु मेरोई सब दोषु ।

सील सिन्धु कृपालु, नाथ, अनाथ-आरत पोषु ।
 वेष, बचन, बिरागमन, अघ, अवगुननि को कोषु ॥
 राम-प्रीति-प्रतीति पोली, कपट, करतब ठोसु ।
 राग रंग कुसंग हो सो, साधु-संगति रोसु ॥
 चहत के हरि-जसहि सेइ सृगाल ज्यों खर गोसु ।
 संभु-सिखवन रसन हूँ नित रामनामहि घासु ॥
 दंभ हूँ कलि नाम-कुंभज सोच-सागर-सोसु ।
 मांद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ॥
 रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोसु ।

मैं हरि पतित पावन सुने ।

मै पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने ।
 ब्याध, गनिका, गज, अजामिल साखि निगमनि भने ॥
 और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ?
 जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ॥
 दास तुलसी सरन आयो राखिए आपने ।

तोसो प्रभु जो पै कहूँ कोउ होतो ।

तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रहि लट ऐसो घटि को तो ।
 कृपा सुधा जलदान माँगिवो कहो सो सांच निसोतो ॥
 स्वाति-सनेह-सलिल सुख चाहत चित-चातक को पोतो ।
 काल करम बस मन कुमनोरथ कवहुँ कवहुँ कुछ भो तो ॥
 ज्यो मुदभय बसि मीन बारि तजि उधरि भभरि लेत गोतो ।
 जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो ।
 तेरे राज राम दशरथ के लयो बयो विनु जो तो ॥

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उष्पम अंगनि पाई ।
 औध तजी मगवास के रुख ज्यों पंथ के सार्थी ज्यों लोग लुगाई ॥
 संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह मुहाई ।
 राजिवलोचन राम चले तजि वाप को राज बटाऊ की नाई ॥

[२]

कागर कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई ।
 मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाई सनेह सगाई ॥
 संग सुभामिनि भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई ।
 राजिवलोचन राम चले तजि वाप को राज बटाऊ की नाई ॥

[३]

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूडत काटे ।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिला कन होत अजाखुर बारिधि बाटे ॥
तुलसी जेहि के पद पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरे अघ गाटे ।
सो प्रभु सवै सरिता तरिवे कहं माँगत नाव करारे ह्वै ठाटे ॥

[४]

एहि घाट ते थोरिक दूर अहै कटि लौं जल थाह दिखाइहौ जू ।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी पर क्यों समझाइहौ जू ॥
तुलसी अवलम्ब न और कछू, लरिका केहि भांति जिआइहौ जू ।
बरु मारिये मोहिं, बिना पग धोये हौ नाथ न नाव चढाइहौ जू ॥

[५]

रावरे दोष न पांयन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन ते बन बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पायं पखारि के नाव चढाइहो, आयसु होत कहा है ।
तुलसी मुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी आर हहा है ॥

[६]

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू वेद ना पढाइहौ
सब परिवार मेरी याही लागि, राजा जू ।
हो दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढाइहौ
गौतम की धरनी ज्यों तरनी तारैगी मेरी ।
प्रभु सों निषाद ह्वैके बाद न बढाइहौ ॥
तुलसी के सई राम रावरो सौ, सांची कहौ ।
बिना पग धोये नाथ नाव ना चढाइहौ ॥

[७]

पुर ते निकसी रघुवीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
 भलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये मधुराधर वै ॥
 फिरि बूझति है चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित है ।
 तिय की लखि आतुरता पिय की अंखियां अति चारुचल जल वै ॥

[८]

जल को गये लखन है लरिका, परिखौं पिय, छांह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
 पोंछि पसेऊ बयारि करौं; अरु पांय पखारिहौ भूभुरि ठाढ़े ॥
 तुलसी रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि बिलम्ब लौ कंटक काढ़े ।
 जानकी नाह को नेह लख्यौ पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े ॥

[९]

ठाढ़े है नौ द्रुम डार गहे, धनु कांधे धरे, कर सायक ले ।
 बिकटी भ्रुकुटी बड़री अंखियां, अनमोल कपोलन की छवि है ॥
 तुलसी अस मूरति आनि हिये जड़ डारि धौं प्राण निछावरिकै ।
 श्रम सीकर सांवरि देह लसै मनो राति महा तम तारक मै ॥

[१०]

बलकल बसन, धनुबान पानि, तून कटि ।
 रूप के निधान, घन दामिनी वरन है ॥
 तुलसी सुतीय संग सहज सुहाये अंग ।
 नवल कंवल हू ते कोमल चरन है ॥
 औरै सो बसन्त, औरै रति, औरै रतिपति ।
 मूरति बिलोके तन मन के हरन है ॥
 तापस बैपै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ ।
 चले लोक लोचननि सुफल करन है ॥

[११]

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, विलोकहु री सखी, मोहिं सी है ।
मग जाग न कोमल, क्यों चलि है, सकुचात मही पद पंकज छवै ॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन चवै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप है भूप के बालक द्वै ॥

[१२]

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता मनु जीत लियो है ।
बान कमान निपंग कसे, सिर सो है जटा, मुनि वेष कियो है ॥
संग लिये बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है ।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलि है सकुचात हियो है ॥

[१३]

सीस जटा, उर बाहु विसाल, विलोचन लाल, तिरछी सी भाँ है ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन मारग में सुठि सो है ॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मो है ।
पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ साँवरे से, सखि रावरे को है ॥

[१४]

सुनि सुंदर बैन सुधारस साने, सयानी है जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाई कछु मुसुकाइ चली ॥
“तुलसी” तेहि अवसर सो है सब अवलोकति लोचन लाहु अली ।
अनुराग तगाड़ में भानु उदै विगसी मनो मंजुल फंज कली ॥

[१५]

धरि धीर कहै चतु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहि हैं ।
कहि हैं जग पोच, न सोच कछु, फल लोचन आपन तौ लहि हैं ।
सुख पाइ हैं कान सुने बतियाँ, कल आपुन में कछु पै कहि हैं ।
“तुलसी” अति प्रेम लगी पलकै, पुलकी लखि राम हिये महि हैं ।

मुख पंकज, कंज विलोचन मंजु, मनोज सरासन सी बनी भौहैं ।
कमनीय कलेवर, कोमल, स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं ॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछैहैं ।
केहिभांति कहौ सजनी, तोहिसो, मृदु मूरतिद्वै निवसी मनमौहैं ॥

धनुष यज्ञ

चौ०—रामरूप अरु सियछवि देखी । नरनारिन्ह परिहरी निमेखी
सोचहिं सकल कहत सकुचार्हीं । बिधिसन बिनय करहिं मनमाहीं
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । मति हमार असि देहि सुहाई
बिनु विचार पन तजि नरनाहू । सीय राम कर करइ बियाहू
जग भल कहहि राव सबकाहू । हठ कीन्हें अंतहु उर दाहू
एहि लालसा मगन सब लोगू । बर साँवरो जानकी जोगू
तब बन्दीजन जनक बोलाये । बिरदावली कहत चलि आये
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हिय हरष न थोरा

दोहा०—बोले बन्दी वचनवर, सुनहु सकल महिपाल ।

पन विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विसाल ॥

चौ०—नृपभुजवतुविधु सिवधनुराहू । गरुअ कठोर बिदित सबकाहू
रावन बान महाभट मारे । देखि सरासन गवहिं सिधारे
सोइ पुगारि को दंड कठोरा । राज समाज आज जेहि तोरा
त्रिभुवन जय समेत वैदेही । बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही
सुनिपन सकलभूप अभिलापे । भट मानी अतिसय मन भापे
परिकर बांधि उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन सिरु नाई
तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं । उठइ न कोटि भांति बल करहीं
जिन्ह के कुछ बिचार मनमाहीं । चाप समीप महीप न जाहीं

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ ।
मनहुँ पाइ भट बाहु बल, अधिक अधिक गरुआइ ॥

चौ०—भूप सहस दस एकहिं बारा । लगे उठावन टरइ न टारा
डगइ न सम्भु सरासन कैसे । कामी बचन सती मन जैसे
सब नृप भये जोग उपहासी । जैसे बिन बिराग सन्यासी
कीरति बिजय बीरता भारी । चले चापकर बरबर हारी
श्रीहत भये हारि हिय राजा । बैठे निज निज जाई समाजा
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने । बोले बचन रोष जुनु साने
दीप दीप के भूपति नाना । आये सुनि हम जो पन ठाना
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आये रनधीरा

दो०—कुँअरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ।
पावनहार बिरंचि जुनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥

चौ०—कहहु काहि यह लाभ न भावा । काहु न संकरचाप चढ़ावा
रहउ चढ़ाउव तोरव भाई । तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई
अब जनि कोउ भाखइ भटमानी । बीरबिहीन मही मैं जानी
तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा न बिधि वैदेहि बियाहू
सुकृत जाइ जौ पन परिहरऊं । कुँअरि कुवारि रहइ का करऊं
जौ जनतेउँ बिनु भटभुवि भाई । तौ पन करि होतेउँ न हँसाई
जनक बचन सुनि सब नरनारी । देखि जानकिहि भये दुखारी
भाखे लखन कुटिल भइ भौहैं । रदपट फरकत नयन रिसौहैं

दो०—कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जुनु वान ।
नाइ राम पद कमल सिर, बोले बचन प्रमान ॥

चौ०—रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई । तेहि समाज अस कहइ न कोई
कही जनक जस अनुचित बानी । बिद्यमान रघुकुलमनि जानी

मुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहउ सुभाव न कछु अभिमानू
जौ तुम्हार अनुसासन पावउं । कन्दुक इव ब्रम्हांड उठावउं
काँचे घट जिमि डारउं फोरी । सकउ मेरु मूलक इव तोरी
तव प्रतापमहिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना
नाथ जानि अस आयसु होऊ । कौतुक करउं विलोकिय सोऊ
कमलनाल जिमि चाप चढावउ । जोजन सत प्रमान लेइ धावउ

दो०—तोरउ छत्रकदंड जिमि, तव प्रतापबल नाथ ।

जौ न करउं प्रभु पद सपथ, कर न धरउं धनु हाथ ॥

चौ०—लखन सकोप बचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले
सकल लोक सब भूप डेराने । सियहिय हरप जनक सकुचाने
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं
नयनहिं रघुपति लखन निवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे
बिस्वामित्र समय मुभ जानी । बोले अति सनेहमय बानी
उठहु राम भंजहु भवचापा । मेटहु तात जनक परितापा
मुनि गुरुबचन चरन सिरु नावा । हरप विपाद न कछु उर आवा
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये । ठवनि जुआ मृगराज लजाये

दो०—उदित उदय गिर मंच पर, रघुवर बालपतंग ।

बिगसे संतमरांज सब, हरपे लोचन भृंग ॥

चौ०—नृपन्ह केरि आसा निसिनासी । बचन नखत अवली न प्रकासी
मानी महिष कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने
भये विसोक कोक मुनि देवा । बरसहि सुमन जनावहिं सेवा
गुरुपद बन्दि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा
सहजहि चले सकल जग स्वामी । मत्त मंजु बर कुंजर गामी
चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भये सुखारी
बंदि पितर सब सुकृत संभारे । जौ कछु पुन्य प्रभाव हमारे
तो सिवधनु मृनाल की नाई । तोरहिं राम गनेस गोसाई

दो०—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ ।

सीतामातु सनेह बस, बचन कहइ बिलखाइ ॥

चौ०—सखि सब कौतुक देखनिहारे । जेउ कहावत हितू हमारे
कोउ न बुझाई कहइ नृप पाहीं । ए बालक असि हठ भल नाहीं
रावन बान छुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करि दापा
सो धनु राज कुँअरि कर देहीं । बालमराल कि मन्दर लेहीं
भूप सयानप सकल सिरानी । सखि विधिगति कहि जाति न जानी
बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवन्त लघु गनिय न रानी
कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा । सोखेउ सुजस सकल संसारा
रविमंडल देखत लघु लागा । उदय तासु त्रिभुवन तम भागा

दो०—मन्त्र परम लघु जासु बस, विधि-हरि-हर सुर सर्व ।

महा मत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥

चौ०—काम कुसुम धनु सायक लीन्हैं । सकल भुवन अपने बस कीन्हैं
देवि तजिय संसय असजानी । भंजव धनुष राम सुनु रानी
सखी बचन सुनि भइ परतीती । मिटा विपाद बड़ी अति प्रीति
तव रामहिं बिलोकि वैदेही । समय हृदय बिनवति जेहि तेही
मनहीं मन मनाव अकुलानी । हाउ प्रसन्न महेस भवानी
करहु सुफल आपन सेवकाई । करि हित हरहु चापगरुआई
गननायक वरदायक देवा । आजु लगे कीन्हैउ तव सेवा
वार वार सुनि विनती मोरी । करहु चापगरुता अति थोरी

दो०—देखि देखि रघुवीर तन, सुर मनाव धरि धीर ।

भरे बिलोचन प्रेमजल, पुलकावली सरीर ॥

चौ०—नीकेनिरखिनयनभरि सोभा । पितुपनु सुनिरि बहुरि मनछोभा
अहह तात दारुन हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी
सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुध समाज बड़ अनुचित होई
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा
बिधि केहि भांति धरउ उर धोरा । सिरिस सुमन कन बेधिय हीरा

सकल सभा कै मति भइ भोरी । अब मोहि संभु चाप गति तोरी
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी
अरि परिताप सीय मन माहीं । लव निमेष जुगसय सम जाहीं

दो०—प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल ।

खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधुमंडल डोल ॥

चौ०—गिराअलिनि मुखपंकज रोकी । प्रकट न लाज निसा अबलोकी
लोचनजल रह लोचनकोना । जैसे परम कृपन कर सोना
सकुची व्याकुलता बढ़ि जानी । धरि धीरज प्रतीति उर आनी
तन मन बचन मोर पन साचा । रघुपति पद मरोज चितु राचा
तौ भगवान सकल उर बासी । करिहहि मोहि रघुवर कै दासी
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू
प्रभुतन चितइ प्रेमपन ठाना । कृपानिधान राम सब जाना
सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे । चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे

दो०—लपन लगेउ रघुवंस मनि, ताकेउ हर को दंड ।

पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मंड ॥

चौ०—दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धग्धिगी न डोला
राम चहहि संकर धनु तोरा । हाहु सजग मुनि आयगु मोरा
चाप समीप राम जब आये । नर नागिन्ह नुर मुकृत मनाये
सब कर संसय अरु अज्ञानू । मन्द महीपन्ह कर अभिमानू
भृगुपति केरि गरव गरुआई । सुर मुनिवरन्ह केरि कदराई
निय कर मोचि जनक पछिताया । रातिन्ह कर दारुन दुख दावा
संभु चाप बड़ बांहीन पाई । चढ़ जाइ सब संग बनाई
राम बाहु बल सिंधु अपारु । चहत पार नहिं कोउ कनहारु

दो०—राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि ।

चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिसेखि ॥

चौ०—देखी विपुल बिकल बैदेही । निमिष विहात कलप सम तेही
 वृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुये करइ का सुधा तड़ागा
 का बरषा जब कृषी सुखाने । समय चुके पुनि का पछिताने
 अस जिय जानि जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी
 गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा
 दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि नभ धनु मंडलसम भयऊ
 लेत चढ़ावत खँचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े
 तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा
 छंद-भरे भुवन घोर कठोर रव रविबाजि तजि मारग चले ।
 चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
 सुर असुर मुनि कर कान दीन्हैं सकल बिकल बिचारहीं ।
 कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ॥

सो०—संकरचाप जहाज, सागर रघुबर बाहु बल ।

बूढ़ सो सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहिं मोह बस ॥

चौ०—प्रभु दोउ चापखंड महि डारे । देखि लोग सब भये मुखारे
 कौसिक रूप पयोनिधि पावन । प्रेमबारि अवगाह सुहावन
 राम रूप राकेस निहारी । बढ़त बीच पुलकावलि भारी
 वाजे नभ गहगहे निमाना । देव बधू नाचहिं करि गाना
 ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा । प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा
 वरषहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किन्नर गीत रसाला
 रही भुवन भरि जब जय बानी । धनुष भंग धुनि जात न जानी
 मुदित कहहि जहँ तहँ नर नारी । भंजेहु राम संभु धनु भारी

दो०—बंदी मागध सूतगन, बिरद बदहिं मतिधीर ।

करहिं निछावरि लोग सब हय गय मनि धन चीर ॥

चौ०—भांभि मृदंग संख सहनाई । भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई
 बाजहिं बहु बाजने सुहाये । जहँतहँ जुबतिन मंगल गाये

सखिन्ह सहित हरषी सब रानी । सूखत धान परा जनु पानी
जनक लहहु सुख सोच बिहाई । पैरत थके थाह जनु पाई
श्रीहत भये भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप छवि बूटे
सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती । जनु चातकी पाइ जलस्वाती
रामहि लपन बिलोकत कैसे । ससिहि चकोर किसोरकु जैसे
सतानन्द तब आयसु दीन्हा । सीता गमन राम पहि कीन्हा

दो०—संग सखी सुन्दर चतुर, गावहि मंगलचार ।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार ॥

वर्षा वर्णन

चौ०—सुन्दरवनकुसुमित अतिसोभा । गुंजत मधुप निकर मधुलोभा
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई । सुख आसीन तहां दोड भाई
कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति विरति नृप नीति विवेका
वरपा काल मेघ नभ छाये । गरजत लागत परम सुहाये

दो०—लछिमन देखहु मोर गन, नाचत वारिद पेखि ।
गृही विरति रत हरप जस, विष्णु भगत कहँ देखि ॥

चौ०—घनघमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा
दामिनि दमकि रहन घन माहीं । खल की प्रीति जथा थिर नाहीं
बरसहि जलद भूमि नियराये । जथा नवहि बुध विद्या पाये
बुंद अघात सहहि गिरि कैसे । खल के वचन संत सह कैसे
छुद्र नदी भरि चलि उतराई । जस थोरेहु धन खल इतराई
भूमि परत भा डावर पानी । जिमि जीवहि माया लपटानी
सिमिटि २ जल भरहि तलावा । जिमि सद्गुन सज्जन पहुँ आवा
सरिता जल जलनिधि महँ जाई । होय अचल निमि जन हरि पाई

दो०—हरित भूमि तृन संकुलित, समुक्ति परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखंड विवाद ते, लुप्त होहिं सदग्रंथ ॥

चौ०—दादुर धुनि चहुँओर सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई
नव पल्लव भे विटप अनेका । साधक मन जस होइ विवेका
अर्क जवास पात बिनु भयऊ । जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी । करई क्रोध जिमि धर्महि दूरी
ससि संपन्न सोह महि कैसी । उपकारी की संपति जैसी
निस तम घन खद्योत विराजा । जनु दंभिन कर जुरा समाजा
महा वृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि सुतंत्र हैं बिगरहिं नारी
कृपा निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मदमाना
देखिए चक्रवाक खग नाहीं । कलिहिं पाय जिमि धर्म पराहीं
ऊसर बरपई तृन नहिं जामा । जिमि हरिजन हियउपजन कामा
विविध जंतु संकुल महि भ्राजा । प्रजा वाढ़ जिमि पाय सुराजा
जह तह रहे पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रिय गन उपजे ज्ञाना

दो०—कबहुँ प्रवल चल मारुत, जहं तहं मेघ विलाहिं ।
जिमि कुपूत के जन्म ते, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥
कबहुँ दिवस मह निबिड तम, कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनभे उपजै ज्ञान जिमि, पाय कुसंग सुसंग ॥

शब्द वर्णन

चौ०—वर्षा विगत सरद रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई
फूले काम सकल महि छाई । जनु बरपा कृत प्रगट बुढाई
उदित अगस्त पंथ जल सोखा । जिमि लोभहिं सोखई संतोखा
सरिता सर निरमल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा
रस रस सूख सरित सरपानी । ममता त्याग करहि जिमि ज्ञानी

जानि सरद रितु खंजन आये । पाय समय जिमि सुकृत सुहाये
 पंक न रेनु सोह अस धरनी । नीत निपुन नृप की जस करनी
 जल संकोच विकल भे मीना । अवुध कुटुंबी जिमि धन हीना
 बिन घननिरमल सोहअकासा । जिमि हरिजन परिहरि सब आसा
 कहूँ कहूँ वृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भर्गति जिमि मोरी

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि ।

निमि हरि भगतिहि पाय श्रम, तजहि आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा । जिमि हरि सरन न एकउ बाधा
 फूले कमल सोह सर कैसे । निरगुन ब्रह्म सगुन भये जैसे
 गुंजत मधुकर निकर अनूपा । सुन्दर खग रव नाना रूपा
 चक्रवाक मन दुख निसि पेखी । जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही
 सरदातप निसि सासि अपहरई । संत दरस जिमि पातक टरई
 देखहिं विधु चकोर समुदाई । चितवहि जिमि हरिजन हरिपाई
 मसक दंस बीते हिम त्रासा । जिमि द्विज द्राह किये कुलनासा

दो०—भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद रितु पाय ।

सद्गुरु मिले ते जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाय ॥



रहीम

[सं० १६१०-१६८३ वि०]

रहीम अकबर के अभिभावक बैरम खां के पुत्र थे । इनका पूरा नाम अठवदुरहीम था । खानखाना उपाधि मिली थी । रहीम अथवा रहिमन कविता में लिखा करते थे । आप हिंदी, संस्कृत, फारसी और अरबी के पंडित थे, कविता तथा कवि-प्रेमी थे, परांपकारी थे । बहुत अच्छे सैनिक, वीर और साहसी सेनापति तथा कुशल शासक थे । लाखों रुपये आपने कवियों को दान दिये । अकबर के प्रियपात्र थे । अनेक लड़ाइयों में आपने विजय प्राप्त की थी । आपके आश्रित भी अनेक कवि थे । यह वाद में जहाँगीर के विरुद्ध हो गये थे । इससे यह बंदी कर लिये गये थे और इनको जागीर छान ली गई थी । बाद में क्षमा मिल गयी । इन्होंने रहीम सतसई, बरबै नायका भेद, शृङ्गार सोरठ, मदनाटक, तथा रास पंचाध्यायी पुस्तकें लिखी हैं । फुटकल रचनाएँ भी इनकी कुछ मिलती हैं ।

रहीम की कविताएँ ब्रज तथा अवधी भाषाओं की हैं । आपका इन दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है । इन्होंने जो कुछ लिखा सबमें निज अनुभव की छाप है । इनकी रचनाओं में कोरा कल्पना नहीं है । यही कारण है कि इनकी रचनाएँ लोकप्रिय हैं और लोगों की जवान पर हैं । शब्दों की मिठास और भावों की सचाई के कारण रचनाएँ हृदय-स्पर्शी हैं । यह मुसलमान थे किन्तु रचनाओं से पता नहीं चलता कहीं इनकी उपमाओं से या किसी ओर स्थल से विदेशी संस्कृति की झलक नहीं पड़ती । सब कथाएँ, संदर्भ भारतीय हैं । इसी देश की घटनाओं की ओर संकेत किया गया है ।

यहाँ दो प्रकार की रचनाएँ दी गयी हैं। आरंभ में नीति के दोहे हैं और इसके पश्चात् बरबै के उदाहरण हैं। दोनों में कवि ने थोड़े में अधिक बात कहने का सफल प्रयास किया है। उनमें जो शिक्षा मिलती है वह सत्य है। ऐसे दृष्टान्तों से कवि अपनी उक्तियों को पुष्टि करता है जो शाश्वत सत्य है। बरबै छंद तो मीठा होता ही है, उसमें जो वर्णन है वह भी बहुत मधुर है। शब्द ऐसे चुन-चुन कर रखे गये हैं जो कर्ण-प्रिय हैं। कला की दृष्टि से और नीति की शिक्षा की दृष्टि से भी दोहे हमारा हिंदी की निधि हैं और बरबै सरल साहित्य की अपार संपत्ति।

रहीम

अच्युत चरन तरंगिनी, शिव सिर मालति माल ।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव भाल ॥ १ ॥
खौचि चढानि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
आज काल मोहन गही, वंस दिया की रीति ॥ २ ॥
धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो हूँ दत गजराज ॥ ३ ॥
पसरि पत्र भूपहि पितहि, सकुचि देत ससि सीत ।
कहु रहीम पल कमल के, को बैरी को मात ॥ ४ ॥
वड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि ।
याते हाथिहि हहरि के, दिए दांत द्वै काढ़ि ॥ ५ ॥
भलो भयो घर ते छुट्यों, हस्यो सीस परि खेत ।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत ॥ ६ ॥
मन से कहां रहीम प्रभु, दग सो कहां दिवान ।
देखि दगन जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान ॥ ७ ॥
रहिमन अपने पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय ।
जो तू अनखाए रहे, तोसों को अनखाय ॥ ८ ॥

रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
 जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥६॥
 रहिमन कबहुँ बडेन के, नाहि गर्व को लेस ।
 भार धरै संसार को, तऊ कहावत सेस ॥७॥
 रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक ।
 दांत दिखावत दीन है, चलत घिसावत नाक ॥११॥
 रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत ।
 ज्यों बढरी अखिया निरखि, आंखिन को सुख होत ॥१२॥
 रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय ।
 कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥१३॥
 रहिमन रिस सहि तजत नहि, बड़े प्रीति की पौरि ।
 मूकन मारत आवई, नौंद विचारो दौरि ॥१४॥
 बिरह रूप घन तुम भयो, अवधि आस उद्योत ।
 ज्यों रहीम भादो निसा, चमकि जात खद्योत ॥१५॥
 हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर !
 खैचि आपनी ओर कां, डारि दियो पुनि दूर ॥१६॥

बरवै

वंदहु विघन विनासन, ऋधि सिधि ईस ।
 निर्मल बुद्धि प्रकासन, सिसु ससि सीस ॥ १ ॥
 ध्यावहुँ साच विमोचन, गिरिजा ईस ।
 नागाभरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस ॥ २ ॥
 ध्यावहुँ विपद विदारन, सुवन समीर ।
 खल दानव बन जारन, प्रिय रघुवीर ॥ ३ ॥
 पुन पुन वंदहुँ गुरु के, पद जलजात ।
 जिहि प्रताप तै मन के, निमिर विलास ॥ ४ ॥

करत घुमडि घन घुरवा, मुरवा सोर ।
 लगि रह विकसि अकुंरवा, नंदकिसोर ॥ ५ ॥
 कहियो पथिक संदिसवा, गहि के पाय ।
 मोहन तुम बिन तनकहु, रह्यो न जाय ॥ ६ ॥
 भज रे मन नंदनंदन, विपति विदार ।
 गोपीजन मन रंजन, परम उदार ॥ ७ ॥
 जदपि बसत है सजनी, लाखन लोग ।
 हरि बिन कित यह चित को, सेख संजोग ॥ ८ ॥
 इत बातन कछु होत न, कहो हजार ।
 सब ही तै हंसि बोलत, नंदकुमार ॥ ९ ॥
 बन उपवन गिरि सरिता, जिती कठोर ।
 लगत देह से बिछुरे, नंदकिसोर ॥ १० ॥
 ज्यों चौरासी लखि मे, मानुष देह ।
 त्यों ही दुर्लभ जग मे, सहज सनेह ॥ ११ ॥
 अति अदभुत छवि सागर, मोहन गात ।
 देखत ही सखि बूडत, दृग जलजात ॥ १२ ॥
 बिन देखे कल नाहिन, यह अखियाँन ।
 पल पल कटत कलप मों, अहो सुजान ॥ १३ ॥
 जब ते बिछुरे मितवा, कहु कस चैन ।
 रहत भरयो हिय साँसुन, आसुन नैन ॥ १४ ॥
 मन मोहन की सजनी, हंसि बतरान ।
 हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन ॥ १५ ॥
 जब ते मोहन बिछुरु, कछू सुधि नाहि ।
 रहे प्रान परि पलकनि, दृग मग माहि ॥ १६ ॥
 उभकि उभकि चित दिन दिन, हेरत द्वार ।
 जब ते बिछुरे सजनी, नंदकुमार ॥ १७ ॥

रे मन भज निसवामर, श्री बलवीर ।
 जो विन जाचे टारत, जन की पीर ॥१८॥
 सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर ।
 बौरी बांझ न जानै, व्यावर पीर ॥१९॥
 समुझि मधुप कोकिल की, यह रसरीति ।
 सुनहु श्याम की सजनी, का परतीति ॥२०॥
 मोहन जीवन प्यारे, कसि हित कीन ।
 दरसन ही को तरफत, ये दृग मीन ॥२१॥
 भजि मन राम सियापति रघुकुल ईस ।
 दीनबंधु दुख टारन, कौसल धीस ॥२२॥
 अहो सुधाधर प्यारे, नेह निचोर ।
 देखन ही को तरसै, नैन चकार ॥२३॥
 आंखिन देखत सबही, कहत सुधारि ।
 पै जग सांची प्रीत न चातक टारि ॥२४॥



केशव दास

[सं० १६१२-१६७४ वि०]

केशवदास औरछा नरेश के दरबारी कवि थे। यह संस्कृत और हिंदी के पंडित थे। आप भाषा तथा काव्यशास्त्र के आचार्य थे। आपकी कविता बहुत क्लिष्ट होती है। स्वाभाविक काव्य-प्रतिभा भाव में नहीं थी किंतु साहित्य के बल पर आपने अनेक काव्य-ग्रंथ लिखे हैं। काव्य-सिद्धांत रस-शास्त्र पर भी आपने ग्रंथ लिखे हैं जो उच्च कोटि के हैं। आपकी रचनाओं पर संस्कृत की स्पष्ट छाप है। इनके समय में रस और अलंकार पर रीतिग्रन्थ लिखने की प्रथा थी। प्राचीन संस्कृत आचार्यों का अनुसरण करके आपने रसिकप्रिया, कविप्रिया दो ग्रन्थ लिखे। आपने कठिन शब्दों का प्रयोग किया है। एक-एक छंद में अनेक अलंकार भरने की चेष्टा की है। छंद भी सैकड़ों प्रकार के आपने लिखे हैं। इनके आठ ग्रन्थ बताये जाते हैं। दो का नाम ऊपर दिया गया है। तीसरी पुस्तक है रामचंद्रिका। इसमें रामकी सारी कथा है, लवकुश की भी कथा है।

नीचे का आवरण रामचंद्रिका से लिया गया है। इसमें परशुराम से राम और उनके भाइयों का संवाद है। संवाद लिखने में केशवदास कुशल हैं। इन संवादों में सजीवता है। जिस पात्र के मुख से जिस मनोभाव की बात निकलनी चाहिये वैसी ही लिखी है।



केशवदास

परशुराम संवाद

दोहा

विश्वामित्र बिदा भए, जनक फिरे पहुँचाय ।
मिले आगिली फौज कौ, परसुराम अकुलाय ॥१॥

चञ्चरीक छन्द

मत्तदंति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं ।
ठौर ठौर सुदेस 'केसव' दुन्दुभी नहिं बज्जहीं ॥
डारि डारि हथ्यार सूरहु जीव लै लै भज्जहीं ।
काटि कै तन ज्ञान एकै नारि वेपन सज्जहीं ॥२॥

दोहा

बामदेव ऋषि सों कह्यौ, परसुराम रनधीर ।
“महादेव कौ धनुष यह, को तोरेउ बलवीर” ॥३॥
बामदेव—“महादेव को धनुष यह परसुराम ऋषिराज ।
तोरेउ रा” यह कहत ही, समुम्मेउ रावन राज ॥४॥

चन्द्रकला छन्द

परशुराम—“बर वान सिखीन असेप समुद्रहिं,
सोखि सखा सुखही तरिहौं ।
पुनि लंकहिं औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कलंकहि कौ मरिहौं ॥
मल मूजिकै राकस खाक सों कै,
दुख दारघ देवन कौ दरिहौं ।
सितकंठ के कंठन को कंठुला,
दसकंठ के कंठन कौ करिहौं” ॥५॥

संयुता छन्द

परशुराम—“यह कौन कौ दल देखिये”,
 वामदेव—“यह राम कौ, प्रभु लेखिये” ।
 परशुराम—“कहि कौन राम, न जानियौ ।”
 वामदेव—सर ताडुका जिन मारियो ॥६॥

विनय छन्द

परशुराम—ताडुका संहारी, तिय न विचारी ।
 कौन बड़ाई ताहि हने ।
 वामदेव—“मारीच हुते संग, प्रबल सकल खल ।
 अरु सुबाहु काहू न गने ।
 करि क्रतु रखवारी, गुरु सुखकारी ।
 गौतम की तिय सुद्ध करी ।
 जिन रघुकुल मंड्यो, हर जनु खंड्यो ।
 सीय स्वयम्बर माँझ वरी” ॥७॥

दोहा

परशुराम—हरहू कौ भी दण्ड द्वै, धनुष चढ़ावत कष्ट ।
 देखा महिमा काल की, कियो सो नर सिसु नष्ट ॥८॥

विजय छन्द

बोरों सबै रघुवंस कुठार की,
 धार में बारन बाजि सरत्थहिं ।
 वान की वायु उड़ाइ कै लच्छन,
 लच्छ करौ अरिहा समरत्थहिं ॥
 रामहिं वाम समेत पठै वन,
 कोप के भार में भूँजौ भरत्थहिं ।

जो धनु हाथ धरें रघुनाथ,
तौ आजु अनाथ करौ दसरथहि ॥६॥

सोरठा

राम देखि रघुनाथ, रथ ते उत्तरे बेगि दें ।
गहे भरत को हाथ, आवत राम बिलोकियौ ॥७॥

दंडक

परशुराम—अमल सजल घनश्याम बपु 'कैसौदास'
चन्दहू तै चारु मुख सुखमा को ग्राम है ।
कौमल कमल दल दीरघ बिलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारौ न्यारौ नाम है ।
बालक बिलोकियत पूरन पुरुष गुन,
मेरो मन मौह्यत ऐसौ एक जाम है ।
वैर मानि वामदेव कौ धनुष तोरे इन,
जानत हौ बीस बिसे राम बेप काम है ॥८॥

गीतिका छन्द

भरत—कुस मुद्रिका समिधे स्रुवा, कुस औ कमंडल को लिये ।
करमूल सर धनु तर्कसी भृगु लात से दरमे हिये ॥
धनु, बान, तीक्ष्ण कुठार 'कैसव' मेखला मृग चर्म सों ।
रघुवीर को यह देखिये, रस वीर सात्विक धर्म सों ॥९॥

नाराच छन्द

राम—प्रचण्ड हैह्याधिराज दंडमान जानिये ।
अखंड कीर्ति लय भूमि देयमान मानिये ।
अदेव देव जे अमीत रच्छमान लेखिये ।
अमेय तेज, भाव भक्ति, मार्गवेस, देखिये ॥१०॥

तोमर छन्द

परशुराम—“सुनि रामचन्द्र कुमार, मन वचन कीर्ति उदार” ।

राम—भृगुवंस के अवतंस, मन वृत्ति है केहि असेँ ॥१४॥

मदिरा छन्द

परशुराम—“तोरि सरासन संकर कौ,

सुभ सीय स्वयम्बर मांझ बरी ।

ताते बह्यौ अभिमान महा,

मन मेरियौ नेक न संक करी” ॥१५॥

राम—‘सो अपराध करो हम सों,

अब क्यों सुधरै, तुम ही सो कहौ” ।

परशुराम—“बाहु दै दोऊ कुठारहिं केसव,

आपने घाम को पंथ गहौ” ॥१६॥

कुंडलिया

राम—“टूटै टूटनहार तरु, बायुहि दीजत दोष ।

त्यौ अव हरके धनुपको, हम पर कीजत रोष” ॥

हम पर कीजत रोष, काल गति जान न जाई ।

होनहार ह्वै रहै, मिटै मेटि न मिठाई ॥

होनहार ह्वै रहै, मोह मद सबको छूटै ।

होय तिनूका बज्र, बज्र तिनूका हैव टूट ॥१७॥

परशुराम—‘केशव’ हैहयराज कौ मांस,

हलाहल कौरन खाय लियौ रे ।

ता लगि मेद महीनप कौ घृत,

घोरि दियौ न सिरानी हियौ रे ।

खीर षड़ानन कौ मद ‘केशव’

सो पल में करि पान लियौ रे ।

तौलौं नहीं सुरब जौ लगि तू,
रघुवंस कौ सोन सुधा पियौरे ॥१८॥

तंत्री छंद

भरत—‘बोलत कैसे भृगुपति सुनिये,
सो कहिये तन मन बनि आवौ ।
आपु बड़े हौ, बड़प्पन राखौ,
जाते तुव सब जग जस पावौ ।
चंदन हूँ मैं अति तन गसिये,
आगि उठै यह गुनि सब लीजै ।
हैहय मारे, नृपनि संहारे,
सो जस लै कि न जुग जुग जोजै ॥१९॥

नाराच छंद

परशुराम—‘भली कही भरत थैं उठाय अंगि अंगतैं,
चढ़ाव चोपि चाप आय बान लै निषंग तैं ।
प्रभाव आपनी देखाव छांडि बाल भाय कै,
रिभाव राज पुत्र मोहि राम लै छुड़ाय कै ॥२०॥

नोरठा

लियौ चाप जब हाथ, तीनिहुँ भैयन रोष करि ॥
वरज्यौ श्री रघुनाथ, तुम बालक जात कहौ ॥२१॥

दोहा

राम—भगवंतन सों जीतियो, कवहुँ न कीने सक्ति ।
जीती एकै बात मैं, केवल कीने भक्ति ॥२२॥

हरिगीतिका छंद

“जब ह्यौ हैहयराज इन, विन छत्र छितमंडल करयौ ।
गिरि बेध पटमुख जीति, तारकनंद को जब ज्यों हरयौ ॥
सुत मैं न जायौ राम सों यह कह्यो पर्वत नंदिनी ।
वह रेनुका तिय धन्य, धरनी मैं भई जगबंदनी” ॥२३॥

तोमर छंद

परशुराम—सुनु राम सील समुद्र तव वंधु हैं अति छुद्र ।
मम बड़वानल कोप, तेहि कियौ चाहत लोप ॥२४॥

दोधक छन्द

शत्रुघ्न—हौ भृगुनन्द बली जग माहीं
राम बिदा करिये घर जाहीं
हौं तुम सों फिर जुद्धहि मांडौं
छत्रिय बंश कौ बैर लै छाड़ौं ॥२५॥

तोटक छंद

परशुराम—यह बात सुनी भृगुनाथ जवे
कहि रामहिं लै घर जाहु अवै
इन पै जग जीवत जो बचिहौं
रन हौं तुमसों फिरि कै रचिहौं ॥२६॥

दोहा

निज अपराधी क्यों हतौं, गुरु अपराधी छांड़ि ।
ताते कठिन कुठार अब, रामहिं सों रन मांड़ि ॥२७॥

विजय छंद

भूतल के सब भूपन कौ,
मद भोजन तौ बहु भाँति कियोई ।

मोद सों तारकनन्द कौ मेद,
 पछूयावरि पानि सिरायौ हियोई ।
 खीर षड़ानन कौ मद 'केशव'
 सो पल में करि पान लियोई ।
 राम तिहारेई कंठ कौ सोनित,
 पान कौ चाहै कुठार कियोई ॥२८॥

लक्ष्मण—जिनकौ हि अनुग्रह वृद्धि करै,
 तिनकौ किमि निग्रह चित्त परै ।
 जिनकौ जग अछछत सीस धरै,
 तिनकौ तन सच्छत कौन करै ॥२९॥

विशेषक छंद

परशुराम—“हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हो,
 मारनहारहि देखि कहा मन छोभत हो ।
 छत्रिय के कुल है किमि नैनन दीन रचौ
 कोटि करौ उपचार कैसेहुँ मीचु बचौ” ॥३०॥

लक्ष्मण—छत्रिय है गुरु लोगन कौ प्रतिपाल करै
 भूलिहु तो तिनके गुन औगुन जी न धरै
 तौ हमकौ गुरु, दोष नहीं अब एक रती
 जो अपनी जननी तुमहीं सुख पाय हती ॥३१॥

परशुराम—लक्ष्मण के पुरिखान कियो'
 पुरसारथ सों न कह्यो परई ।
 बेप बनाइ कियो वनितान कौ,
 देखत 'केशव' ह्यो हरई ।
 कूर कुठार निहार तजै फल,
 ताकौ यहै जो हियो जरई ।

आज तैं केवल तोकौ महाधिक
छत्रिन पै जो दया करई ॥३२॥

गीतिका छंद

तब एक विसति वेर मैं, बिन छत्र की पृथिवी रची
बहु कुंड स्रोनि त सों भरे, पितु तर्पनादि क्रिया सची
उबरे जे छत्रिय छुद्र भूतल सोंधि सोधि संहारिहौ
अब बाल बृद्ध, न ज्वान छाड़हुँ, धर्म निर्दय पारिहौ ॥३३॥

दोहा

राम—“भृगुकुल कमल दिनेस सुनि, ज्योति सकल संसार
क्यों चलिहैं इन सिसुनि पै, डारत हौ जस भार” ॥३४॥

सोरठा

परशुराम—“राम सुबंध संभार, छाड़त हौ सर प्रानहार
देहु हथ्यारन डार, हाथ समेतन बेगि दै” ॥३५॥

राम—“सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि
तप विसिष असेषन की जु अग्नि
सब विसिष छांड़ि सहिहौ अखंड
हर धनुष कखो जब खड खंड” ॥३६॥

परशुराम—“बान हमारेन के तन ज्ञान,
विचारि विचारि बिरंचि करै हैं
गो कुल ब्राह्मन नारि नपुंसक
जे जग दीन सुभाव भरे हैं
राम कहा करिहौ तिनकौ
तुम बालक दैव अदैव डरै हैं
गाधि के नंद तिहारे गुरु,
जिनयौ रिषि बेष किये उबरे हैं ॥३७॥

षट्पद

राम—मगन भयो हर धनुष साल तुलको अब सालै
 वृथा होय बिधि सृष्टि ईस आसन तै चालै
 सकल लोक संहरहु सेष सिर तै धर हारै
 सप्त सिन्धु मिलि जाहिं, होहि सबही तम भारै
 अति अमल ज्योति नारायनी, कहि केसव बुडि जाहि वरु ।
 भृगुनन्द संभारु कुंठार में, कियो सरासन जुक्त सरु ॥३८॥

स्वागता छन्द

राम राम जब कोप करयो जू, लोक लोक भय भूरि भरयो जू ।
 महादेव तब आपुन आये, राम देव दोउ समुझाये ॥३९॥

दोहा

महादेव कौ देखि कै, दोऊ राम विशेष ।
 कीन्हौ परम प्रनाम उन, औसिप दियौ अलेष ॥४०॥

चतुष्पदी

भृगुनन्दन सुनिये, मनमहुँ गुनिये, रघुनन्दन निरदोषी ।
 नित ये अविकारी, सब सुखकारी, सबही बिधि संतोषी ॥
 एकै तुम दोऊ, और न कोऊ, एकै नाम कहायो ।
 आयुर्वल खट्यौ, धनुष जु दृष्ट्यौ, मैं तन मन सुख पायौ ॥४१॥

पद्यटिका छन्द

तुम अमल अनंत अनादि देव, नहि बेद दखानत सबल भेव ।
 सबधौ समान नहि बेद नेह, भव भक्तन कारन धरत देह ॥
 अब आपनपौ पहिचानि बिप्र, सब करहु आगलो काज छिप्र ।
 तब नारायण कौ धनुष जानि, भृगुनाथ दियौ रघुनाथ पानि ॥४२॥

मोटनक छंद

नारायण कौ धनु बान लियौ, ऐंच्यौ हंसि देवन मोद कियौ ।
रघुनाथ कह्यौ अब काहि हनौ, त्रैलोक्य कंयौ भयमानि घनौ ॥
दिवि देव दहे, बहु बात बहे, भूकम्प भयो गिरिराज दहे ।
आकास विमान अमान छये, हा, हा, सबही यह शब्द रये ॥४३॥

शशिवदना छंद

परशुराम—जग गुरु जान्यौ, त्रिभुवन मान्यौ ।
मम गति मारौ, हृदय विचारौ ॥४४॥

दोहा

त्रिपयी की ज्यों पुष्पसर, गति कौ हनत अनंग ।
रामदेव त्यों ही कियौ, परशुराम गति भंग ॥४५॥

चतुष्पदी छंद

सुर पुर गति मानी, सासन मानी, भृगुपति कौ सुख भारौ ।
आसिष रस भीने, सब सुख दीने, अब दसकंठहिं मारौ ॥४६॥

दोहा

सांवत सीतानाथ के, भृगु मुनि दीन्ही लात ।
भृगुकुल पति की गतिहरी, मनौ सुमिरि वह बात ॥४७॥

सवैया

ताडुका तारि, सुबाहु संहारि कै गौतम नारि कै पातक टारे ।
चाप हत्यौ हर कौ हसि कै सब देव अदेव हुते सब हारे ॥
सीतहि व्याहि अभीत चलयौ, गिरि गर्ब चढ़े भृगुनन्द उतारे ।
श्रीगरुडध्वज कौ धनु लै रघुनन्दन, औधपुरी पग धारे ॥४८॥

बिहारी

[सं० १६६०-१७२०]

बिहारी लाल चौबे माथुर ब्राह्मण थे और ग्वालियर के पास बसुवा-गोविंदपुर ग्राम में पैदा हुए थे। बाल्यावस्था भर बुंदेलखंड में रहे, जवानी में अपनी ससुराल मथुरा में। यह जयपुर के यशराज मिर्जा राजा जयसार राशराज जयसिंह के आश्रम में रहते थे। महाराज के कहने पर इन्होंने दोहे लिखे जो लगभग सात सौ हैं। इनके दोहों का संग्रह सतसई के नाम से विख्यात है। प्रत्येक दोहे पर १२ अशरफी पुरस्कार महाराज ने इन्हें दिया था। इनके दोहे बहुत गंभीर हैं। दरजनों टीकाएं इन दोहों पर बन चुकी हैं और नित्य बनती जा रही हैं। प्रत्येक दोहे में गूढ़ भाव भरे हैं। थोड़े में बहुत भाव भर दिये गये हैं। इन दोहों की साहित्यिक महत्ता इससे समझी जा सकती है कि इसके अनुवाद संस्कृत, उर्दू, तथ्य और भाषाओं में भी हो चुके हैं।

इनकी भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। गूर के बाद प्रांजल ब्रज भाषा इन्होंने लिखी है। इनके दोहों में लालित्य और माथुर्य भरा पड़ा है। पदावली भावपूर्ण तथा संगठित है। फारसी के शब्दों का भी इन्होंने व्यवहार किया है। अलंकारों का बाहुल्य है और प्रायः सभी दोहों में चमत्कार है। इनका हृदय पर प्रभाव भी गहरा पड़ता है। अधिकांश दोहे शृङ्गारिक हैं। किंतु कुछ दोहे भक्ति के भी इन्होंने कहे हैं। वह भी बहुत सुंदर हैं। साहित्यिक दृष्टि से बिहारी के दोहों का स्थान बहुत ऊँचा है जो बात और जितनी बात अनेक कवि कई छंदों में नहीं कर सके। बिहारी ने एक दोहे में कह डाला है। किसी ने इनकी प्रशंसा में ठीक कहा है—

सत सैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।

देखने में छोटे लगे घाव करें गंभीर ॥

बिहारी लाल

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
 जा तन की भाँई परै, स्यामु हरित दुति होई ॥१॥
 नीकी दई अनाकनी, फीकी परो गुहारि ।
 तज्यौ मनौ तारन विरदु, बारक बारनु तारि ॥२॥
 जम करि मुंह तरहरि परयो, इहि धरहरि चित लाउ ।
 विषय तृषा परिहरि अजौ, नरहरि के गुन गाऊ ॥३॥
 जगतु जनायौ निहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं ।
 ज्यौ आखिनु सबु देखिये, आँखि न देखी जाहिं ॥४॥
 दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईहि न भूलि ।
 दई दई क्यौ करतु है, दई दई सु कबूली ॥५॥
 बंधु भए का दीन के को तारयौ रघुराई ।
 तूठे तूठे फिरत हौ मूठे विरद कहाय ॥६॥
 कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ ।
 तुमहुं लागि जगत गुरु, जग नाइक, जग बाई ॥७॥
 दियौ, सु सीस चढ़ाई लै, आछी भांति अएरि ।
 जापै सुख चाहतु लियौ, ताके दुखहि न फेरि ॥८॥
 कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार ।
 मो संपति जदपति सदा, विपति विदारनहार ॥९॥
 मकराकृति गोपाल कै सोहत कुंडल कान ।
 धरयौ मनौ हिय धर समरु, ड्योढी लसत निसान ॥१०॥
 या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोई ।
 ज्यौ ज्यौ बूडै स्याम रंग, त्यों त्यों उज्जलु होइ ॥११॥

जपमाला, छापै, तिलक, सरै न एकौ कामु ।
मन कांचै वृथा, सांचै रांचै रामु ॥१२॥
घरु घरु डोलत दीन है, जनु जनु जाचत जाइ ।
दियै लोभ चसमा चखनु, लघु पुनि बडौ लखाइ ॥१३॥
मोहन मूरति स्याम को, अति अद्भुत गति जोई ।
बसतु सु चित अंतर तऊ प्रतिबिंबतु जग होई ॥१४॥
बड़े न हूजै गुननु विनु विरद बड़ाई पाइ ।
कहत धतूरै सौ कनकु, गहनौ गढ्यां न जाइ ॥१५॥
तजि तीरथ, हरि राधिका तन दुति करि अनुरागु ।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग, पग पग होतु प्रयागु ॥१६॥
कीजै चित सोई, तरे जिहि पतितनु के साथ ।
मेरे गुन औगुन गननु, गनौ न गोपीनाथ ॥१७॥
हरि, कीजति विनती यहै, तुम सौ बार हजार ।
जिहिं तिहिं भांति डरयौ रख्यौ, पन्यो रहौ दरबार ॥१८॥
गिरि तै ऊंचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजारु ।
वहै सदा पसु नरनु कौ, प्रेम पयोधि पगारु ॥१९॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु वीति बहार ।
अब, अलि रही गुलाब मैं अपत कंटीली डार ॥२०॥
मैं तपाई त्रयताप सौ राख्यौ हियौ हमामु ।
मति कबहुँक आए यहां पुलकि पसीजै स्यामु ॥२१॥
स्वारथ, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि विहंग, विचारि ।
बाज पराए पानि परि तू पच्छीनु न मारि ॥२२॥
सीस मुकट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल ॥२३॥

नए विससियहिं लखि नए, दुजन दुसह सुभाई ।
 आटै परि प्राननु हरत, कांटे लौलगि पाइ ॥२४॥
 नर की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोइ ।
 जेतौ नाचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊंचौ होई ॥२५॥
 बढत बढत संपति सलिलु, मन सगेजु बढि जाइ ।
 घटत घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुह्ललाइ ॥२६॥
 कोरि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु ।
 नल बल जलु ऊंचै चढ़ै, अंत नीच कौ नीचु ॥२७॥
 गुनी गुनी सबकै कहै निगुनो, गुनी न होतु ।
 सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं, अरक समानु उदोतु ॥२८॥
 दुसह दुराज प्रजानु कौ, क्यों न बढै दुख दंडु ।
 अधिक अंधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चंडु ॥२९॥
 भजन कह्यौ, तानै भज्यौ, भज्यौ न एको बार ।
 दूरि भजन जातै कह्यौ सो तै भज्यौ गवार ॥३०॥
 बसौ बुराई जासु तन ताही को मनमानु ।
 भलौ भलौ कहि छाड़ियै, खोटैग्रह जपु दानु ॥३१॥
 यह वरिया नहि और की, तूं करिया वह सोधि ।
 पाहन नाव चढ़ाइ निहिं, कीनै पार पयोधि ॥३२॥
 अति अगाधु अति औथरौ, नहीं कूप, सरु वाइ ।
 सो ताकौ सागरु जहाँ, जाकि प्यास बुझाई ॥३३॥
 मोर मुकुट की चंद्रिकनु, यौ राजत नन्द नन्द ।
 मनु ससिसेखर की अकस, किये सेखर सत चंद ॥३४॥
 अधर धरत हरि कै परत, ओठ डीठि-पट जोति ।
 हरित बास की बांसुरी, इन्द्र धनुष रंग होति ॥३५॥

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयानो लोग ।
 तीन दवायत निसकहीं, पातक, राजा, रोग ॥३६॥
 जो सीर धरि महिमा महीं, लहियति राजा राइ ।
 प्रगटत जडता अपनिपै, सु मुकटु पहिरत पाई ॥३७॥
 को कहि सकै बडैनु सौ, लखै बडीयौ मूल ।
 दीन दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल ॥३८॥
 समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोई ।
 मन की रुचि जेती जितौ, तित तेती रुचि होई ॥३९॥
 या भव पारावार कौ, उलघि पार को जाई ।
 तिय छवि छायाग्राहिनी, ग्रहै बीचहिं आइ ॥४०॥
 दिन दस आदरु पाइके, करि लै आपु बखानु ।
 जौ लगि काग सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥४१॥
 मरतु प्यास पिंजरा परयौ, सेआ समै के फेर ।
 आदरु दै दै बोलियतु, वाइसु बलि की बेर ॥४२॥
 इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल ।
 ह्वै हैं फेरि वसंत ऋतु, इन डारिनु वे फूल ॥४३॥
 वे न इहां नागर, बढो, जिन आदर तो आव ।
 फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गंवई गांव गुलाब ॥४४॥
 चल्यो जाइ, ह्यां की करै, हाथिनु के व्यापार ।
 नहिं जानतु, इहिं पुर बसै, धात्री, ओड, कुंभार ॥४५॥
 मूड़ चढ़ाऐऊ रहै परयौ, पीठि कच भार ।
 रहै गरै परि राखिबौ, तऊ हियै पर हार ॥४६॥
 इक भीजै, चहलै परै, बूडै, बहै, हजार,
 किते न औगुन जग करै, बैनै चढ़ति वार, ॥४७॥

जाकै एकाएक हूँ, जग व्यौसाय न कोई ।
 सो निदाघ फूलौ परै, आकु डहडहौ होइ ॥४८॥
 मीत न नीति गलीतु ह्वै, जौ धरिये धनु जोरि ।
 खाए खरचै जौ जरै, तौ जोरिये करोरि ॥४९॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ ।
 जगतु तपोवन सौ कियौ; दीरघ दाघ निदाघ ॥५०॥
 छकि साल सौरभ सने, मधुर माधुरी गंध ।
 ठौर टौर भौरत भूपत, मौर भौर मधु अंध ॥५१॥

लटुवा लौं प्रभुकर गहैं, निगुनी, गुन लपटाई ।
 बहै गुनी कर तैं छुटै, निगुनीयै ह्वै जाइ ॥५२॥
 लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल ।
 गिरिधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥५३॥

चितु दै देखि चकोर त्यौ, तीजै भजे न भूख ।
 चिनगी चुनै अंगार की, चुगे कि चन्द मयूख ॥५४॥
 अपनै अपनै मत लगे वादि मजावत सोरु ।
 ज्यौ त्यौ सबको सेइबौ एकै नन्द किसोरु ॥५५॥

बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चित खरौ डरातु ।
 ज्यों किलंकु मयंकु लखि गनै लोग उत्पातु ॥५६॥
 ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगौ सतर ह्वै गैन ।
 दीरघ होहि न नैक हूँ फारि निहारै नैन ॥५७॥

तौ, बलिये. मलियै बनी, नगर नंदकिसोर ।
 जौ तुम नीकै कै लख्यौ मो करनी की ओर ॥५८॥
 मनमोहन सौ मौहु करि, तूं घनस्यामु निहारि ।
 कुंजबिहारी सौं बिहरि, गिरधारि उर धारि ॥५९॥

किती न गोकुल कुलवधू, किहि न काहि सिख दीन ।
 कौने तजी न कुलगली ह्वै, मुरली सुर लीन ॥६०॥
 इन दुखिया आँखियानु कौ सुखु सिरज्योई नाहिं ।
 देखै वनै न देखतै, बिन देखै अकुलाहिं ॥६१॥
 कौ न छल्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग, अकुलाहि ।
 ब्यौ ज्यौ सुरफि भज्यौ चहत, त्यौ त्यौ उरभक्त जात ॥६२॥
 चिरजीवौ जोरि, जुरै, क्यों न सनेह गंभीर ।
 को घटि, ए बृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥६३॥
 ज्यौ ह्वैहौ, त्यां होउंगै, हैं हरि, अपनी चाल ।
 हठु न करौ, अति कठिनु है, गा तरिबौ, गुपाल ॥६४॥
 लोपे कापे इंद्र लौ, रांपे प्रलय, अकाल ।
 गिरधारी राखै सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥६५॥
 चितु दै देखि चकोर त्यां, तीजै भजै न भूख ।
 चिनगी चुगै अंगार की, चुगै कि चंद मयूख ॥६६॥
 अपने अपने मत लगे बादि मचावत सोरु ।
 ज्यों त्यां सबको सेइबौए कै नंदकिसोरु ॥६७॥

भूषण

[सं० १६७०-१७७२]

इनका असली नाम ज्ञात नहीं है, इनका जन्म तिकवाँपुर जिला कानपुर में हुआ था। ये कवि मतिराम के भाई थे, चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कविभूषण की उपाधि दी थी, तभी से ये इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनका अधिक समय महाराज शिवाजी के दरबार में बीता। ये उस युग में पैदा हुए थे, जब हिन्दी में रीति ग्रन्थ अर्थात् रस तथा अलंकार की पुस्तकें कविता में लिखने की प्रथा थी और रचनाएँ अधिकांश शृङ्गार-रस की होती थीं। इन्होंने छत्रपति शिवाजी का वर्णन किया और कविता वीर रस की की थी, किन्तु ढंग वही पुराना रस और अलंकारवाला था। शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् यह महाराज छत्रसाल के यहाँ रहने लगे थे, इनके दो ग्रन्थ विख्यात हैं—शिवराजभूषण तथा छत्रसाल-दशक। शिवराजभूषण में अलंकारों के लक्षण हैं साथ ही उदाहरण में शिवाजी की प्रशंसा है।

निम्न अवतरण उक्त पुस्तक के आरम्भ में से है। इसमें शिवाजी की राजधानी रायगढ़ का वर्णन है। संक्षेप में कवि ने रायगढ़ के वैभव और उसकी सुन्दरता का वर्णन किया है। यह वर्णन परम्परा के अनुसार ही है। शिवराजभूषण एक छोटी-सी अलंकार की पुस्तक है। भूषण की भाषा व्रजभाषा है, इन्होंने शब्दों के साथ बहुत स्वतन्त्रता का बर्ताव किया है। इनके संबंध में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि जब सारे कवि शृङ्गार की कविता लिख रहे थे तो इन्होंने वीर रस लिखकर अलग राह बनायी। इनकी कविता में ओज-गुण की विशेषता है।

हरिगीतिका

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ़ में राजहीं ।
 लखि जच्छ किन्नर सुर असुर गन्धर्व हौसनि साजहीं ॥
 उत्तंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदंग जु वाजहीं ।
 घन समै मानहु घुमरि करि घन घनपटल गलगाजहीं ॥१॥

मुकुतान की झालरिन मिलि मनि माल छज्जा छाजहीं ।
 सन्ध्या समै मानहु नखतगन लाल अम्बर राजहीं ॥
 जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं ।
 मानो गगन तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं ॥२॥

“भूपन” भनत जहँ परसि के मान पुहुपरागन की प्रभा ।
 प्रभु पीतपट की प्रगट पावत सिन्धु मेघन की सभा ॥
 मुख नागरिन के राजही कहूँ फटिक महलन संग मैं ।
 बिकसन्त कोमल कमल मानहुँ अमल गंग तरंग मैं ॥३॥

आनन्द सों मुन्दरिन के कहूँ बदन इन्दु उदोत हैं ।
 नभसरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल कुल होत हैं ॥
 कहूँ बावरी सरकूप राजत बद्ध मनि सोपान हैं ।
 जहँ हंस सारस चक्रवाक विहार करत सनान हैं ॥४॥

कितहूँ बिसाल प्रवाल जालन जटित अंगन भूमि है ।
 जहँ ललित वागनि द्रुमलतनि मिलि रहै झिलमिलि मृमि है ॥
 चम्पा चमेली चारु चन्दन चारिहूँ दिसि देखिए ।
 लवली लवंग लतानि केरे लाखही लागि लेखिए ॥५॥

कहूँ केतकी कदली करौदां कुन्द खरु करबीर है ।
 कहूँ दाख दाडिम सेब कटहल तृत खरु जंभीर है ॥
 कितहूँ कदम्ब कदम्ब कहूँ हिन्ताल ताल तमाल है ।
 पीयूष ते मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल है ॥६॥

पुन्नाग कहूँ कहूँ नागकेसरि कतहूँ वकुल असोक हैं ।
 कहूँ ललित अगार गुलाब पाटल पटल बेला थोक हैं ॥
 कितहूँ नेवारी माधवी सिंगार हार कहूँ लसै ।
 कहूँ भाँति भाँतिन रंग रंग बिहंग आनन्द सो रसै ॥७॥

छप्पय

लसत बिहंगम बहु लवनित बहु भाँति बाग मँह ।
 कोकिल कीर कपोत केलि कल कल करन्त तहँ ॥
 मंजुल महारि मयूर चटुल चातक चकोर गन ।
 पियत मधुर मकरन्द करत भंकार भृंग घन ॥
 भूपन सुवास फल फूल जुत छहूँ रितु बसत बसन्त जहँ ।
 इमि राजदुग्ग राजत रुचिर, सुखदायक सिवराज कहँ ॥



पद्माकर

[सं० १८१०-१८६० वि०]

पद्माकर तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्म बौंदा में हुआ था। इनके पिता भी कवि थे, किंतु पुत्र पिता से कई गुना बढ़ गया। यह अनेक राजा महाराजों के यहाँ आश्रित थे। ये अधिकांश जयपुर दरबार में रहे। सतारा के राजा रघुनाथ राव के यहाँ भी ये गये थे। वहाँ भी इनका बहुत सम्मान हुआ था। उनकी प्रशंसा में भी इन्होंने छंद कहे हैं, उदयपुर, ग्वालियर, वूँदी में भी ये रहे। जयपुर के महाराज जगतसिंह के नाम पर इन्होंने 'जगद्विनोद' नाम का ग्रन्थ रचा। वृद्धावस्था में ये कानपुर में गंगा-तट पर बस गये।

इन्होंने राम की कथा में रामरसायन, वीर रस में हिम्मत बहादुर विरदावली, शृंगार रस में जगद्विनोद लिखा। बहुत से फुटकर छंद भी इनके मिलने हैं। रीतिकाल के कवियों में बिहारी को छोड़कर इनके समान लोकप्रिय और कोई नहीं हुआ। इनकी रचनाओं में बड़ी कोमलता और सरसता है। इनकी अनुप्रासों की छटा अवर्णनीय है, विषय के अनुसार इनकी भाषा बदलती रहती है। जिस रस की कविता है उसीके अनुरूप इन्होंने भाषा भी रखी है।

नाचे के छंद गंगालहरी से दिये जाते हैं। कहा जाता है—इन्हें कोढ़ हो गया था। वे बिटूर से कानपुर पैदल गंगा स्नान के लिये गये और राह में ये छंद बनाये। गंगा स्नान के पश्चात् रोगमुक्त हो गये। इसमें कहाँ तक सचाई है कहा नहीं जा सकता। यह सत्य है कि इनके गंगालहरी के छंद बड़े ओजपूर्ण, विश्वास से भरपूर और भक्ति से ओत-प्रोत हैं। वाक्यों में मुहावरों का अच्छा प्रयोग हुआ है। अनुप्रास और यमक की छटा भी निराली है।

गंगालहरी

क्रूरम पै कोल, कोल पै सेष मंडली है ।
 कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की ॥
 कहै “पदमाकर” त्यों फन पै फबी है भूमि ।
 भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की ॥
 रजत पहार पर सम्भु सुरनायक है ।
 सम्भु पर ज्योति जटाजूट है अपार की ॥
 सम्भु जटा जूटन पै चन्द की छुटी है छटा ।
 चन्द की छटान पै छटा है गंगधार की ॥

[२]

करम को मूल तन, तन मूल जीव जग ।
 जीवन को मूल अति आनंद ही धरिबो ॥
 कहै “पदमाकर” त्यों आनंद को मूल राज ।
 राज मूल केवल प्रजा को मौन भरिबो ॥
 जा मूल अन्न, सब अन्नन को मूल मेघ ।
 मेघन को मूल एक जज्ञ अनुसरिबो ॥
 जज्ञन को मूल धन, धन मूल धर्म अरु ।
 धर्म मूल गंगाजल विन्दु पान करिबो ॥

[३]

सहज सुभाय आय एक महापातकी की ।
 गंगा मैया धोई तू तौ देह निज आप है ॥
 कहै “पदमाकर” सुमहिमा मही में गई ।
 महादेव देवन में बाढी थिर थाप है ॥
 जकि से रहे हैं जम, थकि से रहे हैं दूत ।
 दूनी सब पापन के उठी तन ताप है ॥

बांची बही बाकी गति देखिकै बिचित्र रहे ।

चित्र के से लिखे चित्रगुप्त चुपचाप है ॥

[४]

गंगा के चरित्र लिखि भाण्यौ जमराज यह ।

एरे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै ॥

कहै “पदमाकर” नरक सब मूँदि करि ।

मूँदि दरवाजन को तजि यह थान दै ॥

देखु, यह देव नदी कीन्हे सब देव, याते ।

दूतन बुलाई कै बिदा के बेगि पान दै ॥

फारि डारु फरद न राखु गोजनामचा कहूँ ।

खाता खति जान दै बही को बहि जान दै ॥

[५]

जैसे तैं न मो सों कहूँ नेकहूँ डरात हुतो ।

तैसे अब तोसों हौँ हूँ नेकहूँ न डरिहौ ॥

कहै “पदमाकर” प्रचंड जो परैगो तौ ।

उमडि करि तांसां भुजदंड ठोंकि लरिहौ ॥

चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही तैं ।

काच बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौ ॥

ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि ।

गंगा की कछार में पछारि छार करिहौ ॥

[६]

आयो जौन तेरी धौरी धारा में धँसत जात ।

तिनको न होत मुरपुर में निपात है ॥

कहै “पदमाकर” तिहारो नाम जाके मुख ।

ताके मुख अमृत को पुंज सरसात है ।

तेरो तोय ह्वै कै औ, छुवति तन जाको बात ।
 तिनकी चले न जम लोकन में बात है ॥
 जहाँ जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जात गंगा ।
 तहाँ तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है ॥

[७]

पापिन की पाँति भाँति भाँति बिललाती परी ।
 जम की जमाति हलकंपन हिलति है ॥
 कहै “पदमाकर” हमेस दिव्य बीथिन में ।
 बानन को रेल ठेल ठेलनि ठिलति है ॥
 सुरधुनि रावरे उधारे जग जीवन की ।
 छिन छिन सेन सिवलोक को मिलति है ।
 आसन अरघ देत देत निसि बासर ।
 बिचारे पाकसासन को सांस न मिलति है ॥

[८]

कलित कपूर में कीरति कुमोदिनी में ।
 कुन्द में न कास में कपास में न कंद में ॥
 कहै “पदमाकर” न हंस में न हास हू में ।
 हिम में न हेरि हारो हीरन के वृन्द में ॥
 जेती छवि गंग की तरंगनि में ताकियत ।
 तेती छवि छीर में न छीरधि के छन्द में ॥
 चैत में न चैत चांदनी हू में चमेलिन में ।
 चन्दन में है न चन्दचूड़ में न चन्द में ॥

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास सीतापुर जिले के बाड़ी ग्राम के रहनेवाले थे, इनके जन्म-मरण के सम्बन्ध में कुछ मालूम नहीं है। इनका सुदामाचरित्र बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें अपने सहपाठी श्रीकृष्ण के यहाँ सुदामा के जाने और फिर इन्हें भगवान के वैभव प्रदान करने का वर्णन है। इनकी रचना सरल परिमार्जित ब्रजभाषा में है। इन्होंने दरिद्रता का बड़ा सजीव वर्णन किया है।

यह अवतरण “सुदामाचरित्र” से लिया गया है, अपनी स्त्री के बार-बार कहने से सुदामा द्वारका जाते हैं, वहाँ का वैभव देखकर वे घबरा जाते हैं। श्रीकृष्ण के महल में जाकर द्वारपाल से संदेशा कहलाते हैं। द्वारपाल जाकर भीतर बताता है।

इसमें मित्रता की मर्यादा का बहुत सुन्दर निर्वाह किया गया है, वर्णन में मनुष्य की मनोवृत्ति का सजीव चित्रण है।

नरोत्तमदास की शैली बड़ी मीठी, हृदयग्राहिणी और प्रसाद-गुणपूर्ण है।

सुदामा-चरित्र

दीठि चकचौंधि गई देखत सुवर्नमई ।

एक ते सरस एक दूवारिका के भौन हैं ॥

पूछे बिन कोऊ कहूँ काहूँ सो न करै वात ।

देवता से बैठे सब साधि साधि मौन है ॥

देखत सुदामै धाय पौरजन गहे पाय ।

कृपा करि कहाँ विप्र कहाँ कीन्हों गौन हैं ॥

धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,

बताओ बलवीर के महल यहाँ कौन हैं ॥

सीस पगा न भगा तन में, प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा ।

धोती फटी सी लटी दुपटी, अरु पांय उपानह की नहि सामा ॥

द्वार खडो द्विज दुर्वल देखि, रहो चकि सो बसुधा अभिरामा ।

पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥

बोल्थो द्वारपालक सुदामा नाम पांडे सुनि,

छाँड़े राज काज ऐसे जी की गति जानै को

द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय

भेटे लपटाय करि ऐसे दुख सानै को

नैन दोऊ जल भरि पूँछत कुसल हरि,

विप्र बोल्यां विपदा में मोहि पहिचानै को

जैसी तुम कीन्हों तैसी करैको कृपा के सिन्धु

ऐसी प्रीति दीनबन्धु, दीनन सो मानै को ।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग, कंटक जाल लगै पुनि जोये ।

हाय महादुख पायो सखा, तुम आये इतै न कितै दिन खोये ॥

देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोये ।

पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सो पग धोये ॥

कांपि उठी कमला मन सोचन, मोसो कहा हरि को मन औको ।

रिद्धि कैंपी सब सिद्धि कैंपी, नव निद्धि कैंपी बहना यह धौं को ॥

सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लियो भरि भौंको ।

मेरु डरयो “बकसै जनि मोहि” कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥

मौन भरे पकवान मिठाइन, लोग कहै निधि हैं सुषमा के ।
 साँभे सबेरे चितै अभिलाषत, दाख न चाखत सिंधु रमा के ॥
 भौन भरे पकवान मिठाइन लोग कहै निधि हैं सुखमा के ।
 साफ सबेरे चितै अभिलाषत दाख ने चाखत सिंधु रमा के ॥
 बाभन एक कोऊ दुखिया सेर पावक चाउर लायो सभा के ।
 प्रीति की रीति कहा कहिए, तेहि बैठि चबात है कन्त रमा के ॥
 हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमनै चित धारी ।
 तदुल खाय मुठी दुई, दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी ॥
 खाइ मुठी तीसरी अब नाथ कहाँ निज बास की आस विचारी ।
 रंकहि आप समान कियो तुम, चाहत आपहि होन भिखारी ॥
 धन्य कहा कहिए द्विज जू तुम सो जग कौन उदार प्रवीनो ।
 पाछिली प्रीति निवाही भली बिधि, दाँष निखारि कै रोष न कीनो ॥
 हौं द्विज के चरनोदक हेतु, अजन्म कहाय कै जन्म सुलीनो ।
 आवन कै निज पावन सो यहाँ मो सो अपावन पावन कीनो ॥
 वैसई राज समाज देई, गज बाजि घने मन संभ्रम छायो ।
 कैधों परयो कहूँ मारग भूलिकै, कै अब फेरिहौ द्वारिकै आयो ॥
 मौन विलोकिबे को मग लोचन सींचन ही सब गांव मझायो ।
 पृच्छि भे पांडे कथा सब सो, फिरि भोपरि का कहूँ सोधु न पायो ॥

टूटी सी मडैया मेरी परी हुती याही ठौर ।

तामे परो दुःख कांटो कहां हेम धाम री ॥

जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अंग अंग ।

सखी सोहैं संग वह छूछी हुती छामरी ॥

तुम तौ पटंबर री ओढ़े हौ किनारौदारी ।

सारी जरतारी वह ओढ़े कारी कामरी ॥

मेरी वा पंडाइन तिहारी अनुसार ही पै ।

विपदा सताई वह पाई कहाँ पामरी ॥

कै वह टूटी सी छानी हुती, कह कंचन के सब धाम सुहावत ।
कै पग मे पनही न हुती, कहँ लै गजराजहु ठाढे महावत
भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत
कै जुरतो नही कोदो सवां, प्रभु के परताप ते दाख न भावत ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[सं० १६०७-१९४१]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र काशी के विख्यात वैश्यकुल में उत्पन्न हुए थे, आपके पिता भी ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे, आप बहुत बड़े दानी, साहित्य-प्रेमी तथा विद्वानों के संरक्षक थे। दान में आपने अपनी सारी संपत्ति फूँक दी। कवियों और साहित्यकारों का आपके यहाँ जमघट लगा रहता था। आप स्वयं तो कवि तथा नाटककार थे ही, आपकी प्रेरणा से बहुत से लेखक कवि आदि हो गये जिन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की रचना करके हिंदी की भी वृद्धि की है।

पहला दोहा भारतेन्दु ने पाँच साल की अवस्था में कहा था। आप वर्तमान हिन्दी-गद्य के प्रवर्तक हैं। हिन्दी में वर्तमान युग के नाटकों के पहले निर्माता आप ही हैं। आप कवि भी बहुत ऊँची श्रेणी के थे, चौतीस साल की ही अवस्था में हिन्दी में पचासों ग्रन्थ, नाटक, कविता, गद्य, आपने लिख डाले। आपने खड़ी बोली में भी कविता की है, किन्तु आपकी अधिकांश रचना ब्रजभाषा की है। आपकी ब्रजभाषा बड़ी सरल, मधुर और रसपूर्ण है। आपकी कविताएँ प्रेम तथा भक्ति सम्बन्धी हैं। आपने रचनाओं में भावों को खूब भरा है।

यहाँ जो अवतरण दिया जाता है उनमें दो तो उनकी भक्ति की रचनाएँ हैं जिनमें उन्होंने भगवान से प्रार्थना की है। एक नारद की वाणा की प्रशंसा में है। अंतिम रचना उस समय की है, जब वह काशी में बिकने आये हैं। उस समय कवि काशी का वर्णन करता है। काशी में गंगा की उत्पत्ति, उसका वैभव, नगर के घाट की शोभा दिखाई गई है। वर्णन बहुत सजीव और हृदयग्राही है, पद्माकर के वर्णन में भक्ति-भावना अधिक है, हरिश्चन्द्र के वर्णन में प्राकृतिक छटा भी है। यह उनके नाटक सत्य हरिश्चन्द्र से लिया गया है।

हरिश्चन्द्र

पद

भरोसो रीझन ही लख भारी ।
 हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी ॥
 जो ऐसो सुभाव नहि होतो क्यों अहीर कुल भायो ।
 तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा हार धरायो ॥
 क्रीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ भारन को क्यों धर्यो ।
 फेट कसा टेंटिन पै मेवन की क्यों स्वाद बिसार्यो ॥
 ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस ।
 जग निदित हरिचंदहु को अपनाधहिंगे करि दास ॥ १ ॥

रहै क्यों एक म्यान असि दोय ।
 जिन नैनन में हरि रस छायां तेहि क्यों भावै कोय ॥
 जा तन मन में रमि रहं मोहन तहाँ ज्ञान क्यों आवै ।
 चाहो जितनी बात प्रबोधी ह्यौं को जो पतियावै ॥
 अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरत जो भूलै ।
 हरीचंद व्रज तो कदलीबन काटौ तां फिरि फूलै ॥ २ ॥

नारद की वीणा

पिंग जटा को भार सोस पै सुन्दर सोहत ।
 गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत ॥
 कटि मृगपति को चरम चरम मै घुंघरू धारत ।
 नारायण गोविंद कृष्ण यह नाम उचारत ॥

लै बीना कर वादन करत तान सात सुर सों भरत ।
 जग अघ छिन मै हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भव जल तरत ॥

जुग तूँवन की बीन परम सोभित मनभाई ।
 लय अरु सुर की मनहुं जुगल गठरी लटकाई ॥
 आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहै ।
 कै कोमल खरु तीव्र सुर भरे जग मन मोहै ॥

कै श्रीराधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट ।
 यह अगम अजाने द्वै भरे नित खरचत तो हू अघट ॥

मनु तीरथ मय कृष्णचरित की काँवरि लीने ।
 कै भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने ॥
 जग बुधि तौलन हेत मनहु यह तुला बनाई ।
 भक्ति मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई ॥
 मनु गावन सां श्रीराग के बीना हू फलती भई ।
 कै राग सिंधु के तरन हित यह दोऊ तूँबी लई ॥
 ब्रह्म जीव, निरगुन सगुन, द्वैताद्वैत विचार ।
 नित्य अनित्य विवाद के; हूँ तूँबा निरधार ॥
 जो इक तूँबा लै कढ़ै, सो बैरागी होय ।
 क्यों नहिं ये सबसो बढै, लै तूँबा कर दोय ॥

गंगा छवि

नव उज्जवल जलधार, हार हरीक सी सोहति ।
 बिच बिच छहरनि वृंद मध्य मुक्ता मनि पोहांति ॥
 लाल लहर लहि पवन एक पे इक ईम आवत ।
 जिमि नरगन मन विविध मनोरथ करत मिटावत ॥
 सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत ।
 दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
 श्रीहरि पद नख चंद्रकांत मनि द्रवित सुधारस ।

ब्रह्म कमंडल मंडन, भव खंडन सुर सरबस ॥
 शिव सिर मालति माल, भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
 ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल ॥
 सगर सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण ।
 अगिनित धारा रूप धारि सागर संचारण ॥
 कासी कहूँ प्रिय जानि ललकि भेट्यो उठि धाई ।
 सपने हू नहि तज्यो रही अंकम लपटाई ॥
 कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
 कहूँ छतरो, कहूँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत ॥
 धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका ।
 घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
 मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी नर गावत ।
 वेद पढत कहूँ द्विज, कहूँ जोगी ध्यान लगावत ॥
 कहूँ सुंदरो नहात वारि कर जुगुल उछारत ।
 जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
 धोवत सुंदरि वदन करन अति ही छवि पावत ।
 बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत ॥
 सुन्दरि ससिमुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
 कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
 दीठि जही जहं जात रहत तित ही ठहराई ।
 गंगा छवि हरिचन्द कछू बरनी नहि जाई ॥

दीनदयाल गिरि

[सं० १८५६-१९१५]

बाबा दीनदयाल गिरि गोसाईं परिवार में काशी में पैदा हुए थे। वे हिन्दी और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। ये बड़े सहृदय और भावुक कवि थे। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें अनुरागबाग तथा अन्योक्ति कल्पद्रुम प्रमुख हैं। इनकी अन्योक्तियों के भाव अधिकांश संस्कृत से लिये हुए हैं। इनकी सरलता तथा मनोहरता ऐसी है कि ये मौलिक-सी हो गई हैं। इनकी भाषा बड़ी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित है। इनकी अन्योक्तियाँ बड़ी भावुकता से कही गई हैं। इन्होंने लौकिक विषयों पर अधिकांश अन्योक्तियाँ लिखी हैं, अध्यात्म पक्ष में भी कुछ लिखा है। कहीं-कहीं इन्होंने पदों में श्लोक का व्यवहार किया है। वहाँ इनकी कला का सौन्दर्य है। कहीं कहीं केवल भावों का सौन्दर्य है। ये दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट कवि हैं।

अन्योक्तियाँ

दानी अमरित के सदा वेद करै गुनगान ।
मुनो चंद वंदे तुमै मोद निधान जहान ॥
मोद निधान जहान संभु सिर ऊपर धारै ।
देखि सिंधु हरखाय निकाय चकोर निहारै ॥
बरनै दीन दयाल सबै तुमको सुखखानि ।
एक चार बरजोर घोर निदै दुखदानी ॥
दीजै जावन जलद जू दीन द्विजन को देखि ।
इनको आसा रावरी लागी अहै बिसेखि ॥
लागी अहै बिसेखि देहु कुल कीरति छैहे ।
या चपला है चला ललता धौं कित को जैहे ॥

बरनै दीनदयाल आप जग में जस लीजै ।
 परम धरम उपकार द्विजन को जीवन दीजै ॥
 करिए सीतल हृदय बन सुमन गयो मुरझाय ।
 सुनो बिनय घनस्याम हे सोभा सघन सुहाय ॥
 सोभा सघन सुहाय कृपा की धारा दीजै ।
 नीलकंठ प्रिय पालि सरस जग में जस लीजै ॥
 बरनै दीन दयाल तृषा द्विजगन की हरिए ।
 चपला सहित लखाय मधुर सुरकानन करिए ॥
 रतनाकर महि माँह तुम अति अथाह गंभीर ।
 है प्रवाह दुस्तर भरे ग्राह प्रबल तो नीर ॥
 ग्राह प्रबल तो नीर तीर पैठत बुध हारे ।
 धीर न रहै सरीर तरंग निहारि तिहारे ॥
 बरनै दीन दयाल जौन मरजीवा जाकर ।
 लै मुकुतन को कटै सोइ धनि हे रतनाकर ॥
 जेतो फल तै नमत हो एहो धीर रसाल ।
 तेतो ऊँचे होत हो सोभा होति विसाल ॥
 सोभा होति विसाल बात तब है सुखदायक ।
 रस ते करो निहाल तुम्हें सेवै द्विजनायक ॥
 बरनै दीन दयाल हिये हरि सों हित केतो ।
 धरे रहै छवि स्याम नमित रस देखें जेतो ॥
 नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार ।
 यह बहार दिन चार को बहुरि कटीली डार ॥
 बहुरि कटीली डार होहिंगी ग्रीखम आये ।
 लुब चलैगी संग अंग सब जैहैं ताये ॥

बरनै दीन दयाल फूल जौलों तो पाहीं ।
 रहे घेरि चहु फेरि फेरि अलि ऐहै नाहीं ॥
 कोकिल लोचन ललित करि करिउ न कोय विग्याद ।
 भयो कि मूढ द्रवो न जो मुनि कै पंचम नाद ॥
 मुनि कै पंचम नाद द्रवै मुनि चतुर विवेकी ।
 ते न द्रवै जिहि लगै सुखद बानी काँवे की ॥
 बरनै दीन दयाल लगे प्रिय भाँपिन को बिल ।
 कहा करै ते रंग भौन मुनिण हं कोकिल ॥
 अंचयो कुंभज नीर निधि जो मिध बड़े कहावत ।
 तुम जगजीवन निधिनिकर सीकर सम चटि जान ॥
 सीकर सम चटि जात लोभ तव प्यास न जाई ।
 तुम अकास ऋषि रेनु कहा तिन केरि बड़ाई ।
 बरनै दीन दयाल लोक तिहुँ असि कै पचयो ।
 तऊ भूख नहिं प्यास गई सत सागर अंचयो ॥

श्रीधर पाठक

[सं० १६१६—१६८५]

पाठक जी का जन्म आगरा जिले में फिरोजाबाद परगने के जोंधरी ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा संस्कृत, फारसी तथा अंगरेजी की हुई थी। आपने सरकार के अनेक विभागों में काम किया था। अन्त में आप प्रान्तीय लाट के दफ्तर में सुपरिंटेंडेंट थे। आपको आरंभ से कविता लिखने की रुचि थी। आरंभ में आपने ब्रजभाषा में कविता आरंभ की, फिर द्विवेदी जी के प्रभाव से खड़ी बोली में रचनाएँ की। अंग्रेजी के कवि गोल्ड स्मिथ के तीन ग्रन्थों का अनुवाद आपने पद में किया—एकान्तवासी योगी, उज्ज्व ग्राम, अन्त पथिक। पहली तथा तीसरी रचना खड़ी बोली में है। इन्होंने काश्मीर, शिमला, नैनीताल इत्यादि पहाड़ी प्रान्तों की बड़ी सैर की थी। इनकी रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन बड़ा सुन्दर हुआ है। लखनऊ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति थे।

आपकी रचनाओं में बड़ी मिठास है और आपकी भाषा बड़ी सरल, प्रसाद गुण-पूर्ण है। आपकी कविता में शब्दों का बड़ा सुन्दर मेल है। आप प्रतिभासपन्न, भावुक, रुचिपूर्ण कवि हैं। आपने नये ढाँचे के छन्द भी निकाले जिनमें गति और लय है। अपने समय के कवियों में सबसे अधिक प्रकृति-वर्णन पाठक जी ने किया है। उर्मिका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

पाठक प्रकृति के सुन्दर कवि हैं। यह वर्णन हिमालय पहाड़ पर के एक बन का है। ग्रीष्म, पावस और बसंत में इस बन की शोभा कैसी हो जाती है उसे आठ छन्दों में कवि ने दिखाया है। सरस और सरल भाषा में कवि ने शोभा का वर्णन किया है। अन्तिम छन्द में बन की महिमा है।

बनाष्टक

प्रेमी की मूल सलोनी लता, बिलसै द्रुम-अंगन सो लिपटी ।
नव-पल्लव-संग प्रसून खिले, रचै रंग विरंगित चित्र-पटी ॥
विटपावली बेलें बनावैं बितान, अनेकन एक सों एक सटी ।
वन-भूमि की ऐसी छबिलीछटा, अलिके उर अंतर आनि अटी ॥१॥

चारु हिमाचल आंचल में एक साल बिलासन कौ बन है ।
मृदु-मरमर-शील भट्टैं जल श्रोत है, परवत ओट है, निर्जन है ॥
लिपटे हैं लता-द्रुम, गानमें लीन, प्रवीन बिहंगम कौ गन है ।
भटक्योतहा रावरो भूलौफिरै, मद-बावरो-सो अलि को मन है ॥२॥

कोयल तू कल बोलती री, शुक प्यारे हरे पट-भाते, अहो ।
भोरी मैना सुनैना रग्लिनका, सो परेवा परेईके प्यारे, अहो ।
अहो मोर मचावत सार, चकोर पपीहा पिया-रट-वारे-अहो ।
वनके तुम बाँके सदाँके धनी, बन जीवन प्रान तिहारे अहो ॥३॥

भिल्ली करै भनकार कहूँ, फुफकारत सापिनें रोप भरी ।
पर घू घू डरावने बोलत बोल, बिलापे बिलाट घरीपे घरी ॥
कहूँ हूकत म्यार है, भूकत ल्याग, लराई लरै लहि लास मरी ।
निंसि भीलन-भावे न मनकी, बनवासकी वासना नासकरी ॥४॥

विन्ध्यके वन्य विभागमें एक, सरोवर स्वच्छ सुहावना है ।
कमलांसे भरा, भ्रमरोंसे घिरा, विपणोंसे सजा, मन-भावनाँ है ॥
कलहंस स्वतंत्र कल्लोल करे, खग-वृन्द का बोल लुभावना है ।
बहै मन्द समीर पराग लिए, अनुराग-हिये-हुलसावना है ॥५॥

जेठके दारुन, आपत से, तप से जगतीतल जावै जला ।
नभ-मंडल छाया मरुस्थल आ, दल बांध के अंधड़ आवै चला ॥

जल-हीन जलाशय व्याकुल हैं, पशु पक्षि प्रचंड है भानु-कला ।
किसी कानन-कुंजके धाममें प्यारे, करे बिमराम चलीतो भला ॥६॥

कालि घटाकी घमंड घटा, नभ-मंडल तारका वृंद-खिले ।
उजियाली निशा, छविशाली दिशा, अतिसोहें धरातल फूले-फले ॥
निखरे सुथरे बन-पंथ खुले, तरु-पल्लव चंद्रकला से धुले ।
बन शारदी-चंद्रिका-चारद ओढ़ै, लसे समलंकृत कैसे भले ॥७॥

भारत में बन ! पावन तूहि, तपस्वियों का तप-आश्रम था ।
जग-तत्त्वकी खोजमें लगन जहाँ, ऋषियों का अभ्यस किया श्रम था ।
जब प्राकृत बिस्वका विभ्रम और, था सात्विक जीवनका क्रम था ।
महिमा बन-वासकी थी तब और, प्रभाव पवित्र अनूपम था ॥८॥



रत्नाकर

[सं० १६२३-१६८६]

जगन्नाथ दास रत्नाकर का जन्म काशी में ऊँचे वैश्य घराने में हुआ था। ये फारसी तथा हिन्दी के अच्छे विद्वान थे, बी० ए० पास थे। ये बहुत दिनों तक महारानी अयोध्या के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। कलकत्ता साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए थे। ये ब्रजभाषा में कविता करते थे। इनकी भाषा बहुत ही प्रांजल, सुव्यवस्थित और शुद्ध होती थी। ये ब्रजभाषा के अन्तिम महान् कवि हो गये हैं। इन्होंने बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं जिनका संग्रह रत्नाकर नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी रचना में ओज भी बहुत है। इनकी कविता अनुप्रास और यमक से अलंकृत है।

आपकी एक रचना उद्धवशतक है। श्रीकृष्ण जब मथुरा चले गये थे और उनके प्रेम में निवापी व्याकुल थे तब श्रीकृष्ण ने उद्धव को गोकुल का हाल-चाल लेने को भेजा। यहां उद्धव आये और सबसे बातें हुईं, फिर आप मथुरा लौट रहे हैं। जिस कठिनाई से आप चले और जिस अवस्था में मथुरा लौटे उसी प्रसंग के ये छन्द है।

वर्णन बहुत मार्मिक, करुणरसपूर्ण है। छन्दों में प्रवाह है। शोक में ब्रज के पेड़-पौदे भी गोपियों से आत्मभावापन्न हो गये हैं। पद-योजना बड़ी मधुर है, कल्पना दुरुह नहीं है।

उद्धव का मथुरा लौटना

धार्ज जित तित तै बिदाई हेत ऊधव की,
गोपी भरीं आरति संभारति न सांसुरी।

कहै रतनाकर मयूर पच्छ कोऊ लिये,
 कोऊ गुंज अंजुली उमाहे प्रेम आंसुरी ॥
 भाव भरी कोई लिये रुचिर सजाव दही,
 कोऊ मही मंजु दावि दलकति पांसुरी ।
 पीत पट नन्द जसुमति नवनीत नैया,
 कीरति कुमारी सुरवारी दर्ई बांसुरी ॥ १ ॥
 कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौ माथ,
 भापन का लाख लालसा सौ नहि जात है ।
 कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के,
 कातर हैं प्रेम सौ सकल महि जात है ॥
 सवद न पावत सो भाव उमगावत जो,
 ताकि ताकि आनन ठगे से ठहि जात है ।
 रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ,
 रंचक हमारी सुनौ कहि रही जात है ॥ २ ॥
 कोऊ चले कांपि संग कोऊ उर चांपि चले,
 कोऊ चले कलुक अलापि हलबल से ।
 कहै रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले,
 कोऊ चले कहत संदेस आवरल से ॥
 आंस चले काहू के सु काहू के उसांस चले,
 काहू के हियै पै चन्द्रहास चले हल से ।
 ऊधव के चलत चलाचल चली यौ चल,
 अचल चले और अचले हू भये चल से ॥ ३ ॥
 गोपी, ग्वाल, नन्द, जसुदा सौ तौ बिदा है उठे,
 उठत न पाय पै उठावत डगत है ।

कहै रतनाकर संभरि सारथी पै नीठी,
 दीठिनि बचाइ चलयौ चोर ज्यौ भगत है ॥
 कुंजनि की कूल की कलिन्दी की रुएँदी दसा,
 देखि देखि आंस औ उसांस उमगत है ।
 रथ तै उतरि पथ पावन जहाँ ही तहाँ,
 बिकल बिसूरि धूरि लोटन लगत है ॥ ४ ॥
 चल चित पारद की दम्भ कंजुली कै दूरि,
 ब्रज मग धूरि प्रेम मूरि सुभ सीली लै ।
 कहै रतनाकर सु जोगनि विधान भावि,
 अमित प्रमान ज्ञान गन्धक गुनीली लै ॥
 जारि घट अन्तर ही आह धूम-धारि सब,
 गोपी बिरहागिनी निरन्तर जगीली लै ।
 आये लौटि लज्जित नवाये नैन ऊधौ अब,
 सब सुख साधन कौ सूधै सौ जतन लै ॥ ५ ॥
 कहै रतनाकर गंवाये गुन गौरव औ,
 गरब गढ़ी को परिपूरन पतन लै ।
 छाये नैन नीर पीर कसक कमाये उर,
 दीनता अधीरता के भार सौ नतन लै ॥
 प्रेम रस रुचिर बिराग तूमड़ी मै पूरि,
 ज्ञान गूढ़ी मै अनुराग सौ रतन लै ॥ ६ ॥
 आये दौरि पौरि लौ अवाई सुनि ऊधव की,
 और ही बिलोकि दसा दग भरि लेत है ।
 कहै रतनाकर बिलोकि बिलखान उन्हें,
 येऊ कर कांपत करेजै धरि लेत है ॥

आवति कङ्कूकि पूछवै औ कहिवे की मन,
 परत न साहस पै दोऊ दरि लेत है ।
 आनन उदास सांस भरि उकसौहै करि,
 सौहै करि नैननि निचौहै करि लेत है ॥ ७ ॥

प्रेम मद छाके पग परत कहाँ के कहाँ,
 थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है ।
 कहै रतनाकर यौ आवत चकात ऊपौ,
 मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है ॥

धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौ,
 सारत वंहोलिनि जो आंस अधिकाई है ।
 एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
 एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥ ८ ॥

ब्रज रजरंजित सरीर सुभ ऊधव कौ,
 धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाये लेत ।
 कहै रतनाकर सुप्रेम मद माते हेरि,
 थरकति बांह थामि थहरि थिराये लेत ॥

कीरति कुमारी के दरस रस सद्य ही की,
 छलकनि चाहि पलकनि पुलकाये लेत ।
 परत न देत एक वृंद पुहुमी की कोछि,
 पोछि पोछि पट निज नैननि लगाये लेत ॥ ९ ॥

आंसुनि की धार औ उभार कौ उसांसनि के,
 तार हिचकीनि से तनिक दरि लेन देहु ।
 कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच,
 भावनि के विषम प्रपंच सरि लेन देहु ॥

आतुर हूँ और हूँ न कातर बनावौ नाथ
 नैसुक्त निवारि पीर धीर धरिलेन देहु
 कहत अत्रै है कहि आवत जहां लौ सबै
 नैकु थिर कहत करेजौ करि लेन देहु ॥१०॥

गवरे पठाये जांग देन कौ सिधाये हुते
 ज्ञान गुन गौरव के अति उदगार मैं
 कहै रतनाकर पे चातुरी हमारी सबै
 कित धौ हिरानी दसा दारुन अपार मैं

उड़ि उधरानी किधौँ ऊरध उसासनि मैं
 बहि धौ विलानी कहूँ आँसुनि की धार मैं
 चूर हैं गई धौ भूरि दुख के दरेरनि मैं
 छार हैं गई धौ बिरहानल की भार मैं ॥११॥

ज्वालामुखी गिरि तै गिरत द्रवे द्रव्य कैधौँ
 वारिद पियौ है बारि बिप के विवाने मैं

कहै रतनाकर कै काली दाव लेन काज
 फेन फुफुकारै उहि गांव दुख साने मैं

जीवन वियोगिनि कौ मेघ अंचयौ सो किधौँ
 उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने मैं ॥१२॥

जैहै व्यथा विपम विलाइ तुम्हें देखत ही
 ताते कही मेरी कहूँ मूठि ठहरावौ ना

कहै रतनाकर न याही भय भापै भूरि
 याही कहै जाजौ बस विलंब लगावौ ना

एतौ और करत निवेदन सबेदन है
ता कौ कछु बिलग उदार उर ल्यावौना
तब हम जानै तुम धीरज धुरीन जब
एक बार ऊधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना ॥१३॥

छावते कुटीर कहुँ रम्य जमुना कै तीर
गौन रौन रेती सौ कदापि करते नहीं
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम गाथा गूढ़
सौन रसना में रस और भरते नहीं

गोपी ग्वाल बालन के उमडत आंसू देखि
लेखि प्रलयागम हू नैकु डरते नहीं
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ
तजि ब्रज गांव इतै पाव धरते नहीं ॥१४॥

हरि औध

[सं० १९२२-२००३]

हरिऔधजी का जन्म आजमगढ़ जिले के निजामाबाद कस्बे में हुआ था। इन्होंने हिंदी मिडिल पासकर नारमल परीक्षा पास की और अध्यापकी आरंभ की। आपने घर पर संस्कृत भी पढ़ी। बाद में आप कानून-गो हो गये। पेंशन लेने के बाद आप काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक हो गये। आपका संपर्क सिक्खों के गुरु शाहजादा बाबा सुमेरसिंह से था। वही आपके काव्य-गुरु थे। वह भारतेन्दु के समकालीन थे। “हरिऔध”जी आपका उपनाम है। आपका पूरा नाम अयोध्यासिंह उपाध्याय है। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे, आपके पितामह सिक्ख हो गये थे।

हरिऔधजी ने आरंभ में ब्रजभाषा में रचना आरंभ की। लेकिन समय के प्रभाव से, युग की पुकार से आपने खड़ी बोली में रचना आरंभ की। आपने पहले-पहल खड़ी बोली में प्रबंध-काव्य ‘प्रिय-प्रवास’ लिखा। इसमें कृष्ण कथा को आपने नया रूप दिया और कृष्ण को लोकनायक और जनसेवक के रूप में चित्रित किया है। यह पुस्तक महाकाव्य की श्रेणी की है। पहले-पहल वर्णवृत्तों में खड़ी बोली में इतना बड़ा प्रबंध-काव्य लिखा गया। खड़ी बोली होने पर भी भाषा बहुत मधुर और सरस है। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और आज तक साहित्यप्रेमी इसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। अनेक वर्णिक छंदों का इसमें प्रयोग किया गया है।

हरिऔधजी मुहावरेदार कविता लिखने में भी बहुत पटु थे। आपकी रचनाएँ प्रिय प्रवास के अतिरिक्त वैदेही वनवास, पारिजात हैं।

रस-कलश ब्रजभाषा की कविताओं का संग्रह है। इसके अतिरिक्त चोखे चौपदे, चपते चौपदे, बोलचाल इन्हीं मुहावरेदार कविताओं का संग्रह है।

इनकी रचना दो शैलियों में होती थी। विशुद्ध संस्कृत के तत्सम शब्दोंवाली जैसे प्रिय-प्रवास और चलती बोली में जैसे, चौपदे। गद्य भी यह अच्छा लिखते थे।

नीचे का पहला अवतरण प्रिय-प्रवास का है। वसंत में ब्रज का वर्णन है। दूसरा अवतरण उनके वृंद में से है। वसंत का वर्णन मनोहर है। चौपदों में भी मुहावरों का प्रयोग पठनाय है।

वसंत दृश्य

विमुग्धकारी भधुमास मंजु था,
वसुंधरा थी कमनीयतामयी।
विचित्रता भाव विराजती रही,
वसंत वासंतिका वनांत में ॥१॥

नवीनभूता वन की विभूति में,
विनाशिता बेलि विहग-वृंद में।
अनूपता व्यापित थी वसंत की,
निकुंज में कूजित कुंज पुंज में ॥२॥

प्रफुल्लिता कामल पल्लवान्विता,
मनाशिता मूर्ति नितांत रंजिता।
वनस्थली था भकरंद मोदिता,
अकालिता कोकिला काकलीमयी ॥३॥

निसर्ग ने, सौरभ ने, पराग ने,
प्रदान की थी अति कांत भाव से।

वसुंधरा को, पिक को, मिलिंद को,
मनोज्ञता, मादकता, मदांधता ॥४॥

वसंत की भाव भरी विभूति सी,
मनोज की मंजुल पीठिका समा ।
लसी कहीं थी सरसा सरोजिनी,
कुमोदिनी मानस मोदनी कहीं ॥५॥

नवांकुरों में, कलिका अनूप में,
नितांत न्यारे फल पत्र पुंज में ।
निर्गम द्वारा सु प्रसूत पुष्प में,
प्रभूत पुंजीकृत थी प्रफुल्लता ॥६॥

विमुग्धता की वर रंग भूमि सी,
प्रलुब्धता केलि वसुंधरोपमा ।
मनोहरी थीं तरु ढालियां महा,
नई कली कोपलों कोमलों भरी ॥७॥

अन्यूनता दिव्य फलादि की, दिखा,
महत्त्व औ गौरव, सत्य त्याग का ।
विचित्रता से करती प्रकाश थी,
स पत्रता पादप पत्रहीन थी ॥८॥

वसंत माधुर्य्य विकाशवर्द्धिनी,
क्रियामयी मार महोत्सवांकिता ।
सु कोपलें था तरु अंक में लसी,
स अंगराग्न अनुराग रंजिता ॥९॥

नये नये पल्लववान पेड़ में,
प्रसून में आगत थी अपूर्वता ।

बसंत में थी अधिकांश शोभिता,
विकाशिता बेल लता प्रफुल्लिता ॥१०॥

अनार में औ कचनार में बसी,
ललामता थी अतिही लुभावनी ।
बड़े लसै लोहित रंग पुष्प में,
पलाश की थी अपलाशता ढकी ॥११॥

प्रसादिका लोचन सौरभों भरी,
बसंत वामंतिका विभूषिता ।
विनोदिता हो बहूत थी विनोदिनी,
प्रिया समा मंजु प्रियाल मंजरी ॥१२॥

दिशा प्रसन्ना महि पुष्प संकुला,
नये दलीं पूरित पादपावली ।
बसंत में थी लतिका स औवना,
अलापिका पंचम तान कोकिला ॥१३॥

अनूप स्वर्गीय सुगंधि में सना,
सुधा बहाता धमनी समूह में ।
समीर आता मलयाचलांक से,
किसे बनाता न विनोद मग्न था ॥१४॥

प्रसादिनी पादप, गंधवर्द्धिनी,
विकाशिनी पुष्प, लता विनोदिनी ।
अलौकिकी थी मलयानिली क्रिया,
विमोहिनी चित्त, विहंग मोदिनी ॥१५॥

बसंत शोभा प्रतिकूल थी बड़ी,
वियोगमग्ना ब्रज भूमि के लिये ।

बना रही थी उसको व्यथामयी,
विकाशपाती बन पादपावली ॥१६॥

दृगों, उरों को, दहती अतीव थीं,
शिखाग्नि तुल्या तरुपुंज कोपलें।
अनार शाखा कचनार डार थी,
प्रतप्त अंगार अपार पूरिता ॥१७॥

नितांत ही थी प्रतिकूलनामयी,
प्रियाल की प्रीति निकेत मंजरी।
बना अतोवाकुल म्लान चित्त को,
विदारता था तरु कोविदार को ॥१८॥

भयंकरी व्याकुलता प्रसूतिका,
सशंकता वद्धिनि मादनाशिनी।
अतीव थी रक्तमयी अशोभना,
पलाश की पंक्ति पलाशिनी समा ॥१९॥

इतभूतः भ्रांत समान घूमती,
प्रतीत होती अवली मलिन की।
विदूषिता हों अति थी कलंकिता,
अलौकिकी कोकिल कांत कंठता ॥२०॥

प्रसून की मोहकता मनोज्ञता,
नितांत थी अन्य मनस्कतामयी।
न वांछिता थी न विनोदनीय थी,
अमानिता हों मलयानिलीयता ॥२१॥

बड़े यशस्वी वृषभानु गेह के,
समीप थी एक विचित्र वाटिका।

प्रबुद्ध ऊधौ इसमें इन्हीं दिनों,
प्रबोधने श्री ब्रज देवि को गये ॥ २२ ॥

बसंत को पा यह शांत बाटिका,
स्वभावतः कांत नितांत थी हुई ।
परंतु होती उस में स-शांति थी,
विकाल की कौशलकारिणी क्रिया ॥ २३ ॥

शनैः शनैः पादप पुंज कोपलें,
विकास पा के करती प्रदान थी ।
स आतुरी रक्तिमता स्वकीय को,
प्रमोदनीया कमनीय श्यामता ॥ २४ ॥

अनेक आकार प्रकार से मनो,
प्रकाशती वे यह गूढ़ मर्म थी ।
नहीं रंगेगा वह श्याम रंग में,
न आदि में जो अनुराग में रंगा ॥ २५ ॥

प्रसून थे भाव समेत फूलते,
लुभावने श्यामल पत्र अंक में ।
सुगन्धि को पूत बना दिगंत में,
प्रसारती थी पवनाति पावनी ॥ २६ ॥

प्रफुल्लता में अति गूढ़ म्लानता,
मिली हुई साथ पुनीत शांति के ।
सु व्यंजिता संयत भाव संग थी,
प्रफुल्ल पाथोज प्रसून पुंज में ॥ २७ ॥

स शांति आते उड़ते निकुंज में,
स शांति जाते ढिग थे प्रसून के ।

बने महा नीरव शांत संयमी,
स शांति पीते मधु को मिलिंद थे ॥ २८ ॥

विनोद से पादप पै विराजना,
बिहंगिनी साथ विलाम बोलना ।
बँधा हुआ संयम मूत्र संग था,
कलोल कारी खग का कलोलना ॥ २९ ॥

न प्रायशः आनन त्यागती रही,
नही बनानी ध्वनिता दिगंत थी ।
न बाटिका में लहती विकाश थी,
अकुंठिता हो कल कंठ काकली ॥ ३० ॥

इसी तपोभूमि समान बाटिका,
सु अंक में मुंदर एक कुंज थी ।
समावृता श्यामल पुष्प सुकुला,
अनेकशः बेलि लता समूह से ॥ ३१ ॥

विराजती थी वृषभानुनन्दनी,
इसी बड़े नीरव शांतिकुंज में ।
अतः यही श्री बल वीर बंधु ने,
उन्हें विलोका अलिवृंद आवृता ॥ ३२ ॥

प्रशांत म्लाना वृषभानु पुत्रि की,
समीप आके अवलोक देवि सी ।
अलौकिकी मूर्ति महत्व से भरी,
विचित्र ऊधो उर की दशा हुई ॥ ३३ ॥

अतीव थी कोमल कांति नेत्र की,
परंतु थी शांति विषाद अंकिता ।

(१०४)

विचित्र मुद्रा मुखपद्म की रही,
प्रफुल्लता आकुलता समन्विता ॥ ३४ ॥

स प्रीति वे आदर के लिये उठी,
विलोक आया ब्रज देव बंधु को ।
पुनः उन्होंने निज शांतकुंज में,
उन्हें बिठाया अति भक्ति भाव से ॥ ३५ ॥

अतीव सम्मान समेत आदि में,
ब्रजेश्वरी की कुशलात पूछ के ।
पुनः सुधी ऊधव ने स नम्रता,
कहा संदेशा यह श्याममूर्ति का ॥ ३६ ॥

चौपदे

[१]

आम बौरे बही बयार बसी,
सज लताएं हरी भरी डोलीं ।
बोलवाला बसन्त का होते,
खिल उठी बेलि, कोयलें बोलीं ॥

[२]

भाँवरे बार बार भर भौरे,
फूल की देखकर फबन भूले ।
कोपलें देख कोयलें कूकीं,
दिल कमल खिल गया कमल फूले ॥

(१०५)

[३]

हैं लुभाती दिल भला किसका नहीं,
लहलहाती बेलि फूलों की महक,
गूँज भौरों की तिनलियों की अदा
कोयलों की कूज चिड़ियों की चहक ।

[४]

है फवे आज बेल बूटे भी,
भाड़ियों पर लसी लुनाई है
दूब पर है अजब छटा छाई,
फूल सा घास रंग लाई है ॥

[५]

लस रही है पलास पर लाली
या घिरी लालरी बबूलों से ।
है लुभाते किसे नहीं सेमल,
लाल हाँ लाल लाल फूलों से ॥

[६]

पा गये पर बहार सा मौसिम,
क्यों न अपनी बहार दिखला लें ।
लहलही बेलि चहचहै खग के,
डहडहे पेड़ डहहही डालें ॥

[७]

आज कांटे बगैर कर जी में,
फूल भी हो गया कँटीला है ।

(१०६)

चिटकती देखकर गुलाब कली,
चोट सा चित हुआ चुटीला है ॥

[८]

फूल है घूम घूम चूम रही,
है कली को खिला खिला देती ।
है महक से दिशा महकती सी,
है मलय पौन मोह दिल लेती ॥

[९]

गूँजकर झुककर झिझककर मूमकर,
भौर करके भौर हैं रस ले रहे ।
फूल का खिलना बिहँसना बिलमना,
दिल लुभाना देख हैं दिल दे रहे ॥

[१०]

टूटना जब कि चाहिए था जाल,
तब गया और भी जकड़ जजाल ।
बढ़ गई और भी सुखों की भूख,
जब कि खिचड़ी हुए हमारे बाल ॥

[११]

रंगरलियाँ मना जनम खोया,
रंग लाती रही समझ मोटी ।
तब खुली आँख और सुध आई,
जब कि ली काल ने पकड़ चोटी ॥

(१०७)

[१२]

फूल गेंदे गुलाब बेले के,
एक ही सूत में गये गाँथे ।
आपकी सूझ को कहें क्या हम,
आपकी रीझ बूझ सिर माथे ॥

[१३]

है चिमट कर काढ लेनी चींटियाँ,
धूल में मिलजुल गई चीनी छिटी ।
है भला किस काम का वह, जो कहे,
कब किसी से लीक माथे की मिटी ॥

[१४]

जब कि दे सकते नहीं जी में जगह,
तब कहीं क्या जी लगाना चाहिए ।
सोच लो आँखें चुराकर और की,
क्या तुम्हें आँखें चुराना चाहिए ॥

[१५]

काँपती मौत भी रही जिनसे,
जो रहे काल भारती के भी ।
लोग तब डींग मारते क्या हैं,
जब पलक मारते मरे वे भी ॥

[१६]

तो कहें कैसे कि पकते केस से,
सीख हम वैराग की कुछ पा सके ।

(१०८)

जो पके फल को टपकता देखकर,
आंख के आंसू नहीं टपका सके ॥

[१७]

सांस उसकी किसलिए फूले भला,
दूसरों को वह फले या मत फले ।
नाक तो है सांस लेने की जगह,
सांस दाई या कि बाई ही चले ॥

[१८]

बेतरह मुंह की अगर खाते नहीं,
तो चबाते क्यों न लोहे के चने ।
सामने आकर करें मुंह सामने,
मुंह दिखाये मुंह दिखाते जो बने ॥

[१९]

कर सकें हम बराबरी कैसे,
हैं हमें रंगते मिलीं फीकी ।
हम कसर हैं निकालते जी से,
वे कसर हैं निकालते जी की ॥

जयशंकर प्रसाद

[सं० १९४६-१९६४]

जयशंकर “प्रसाद” का जन्म काशी के प्रसिद्ध ताम्बूल के व्यापारी सुंघनी साहु के घराने में हुआ था। स्कूल में आपकी शिक्षा कम हुई। घर पर ही आपने संस्कृत, हिन्दी तथा अंगरेजी की शिक्षा प्राप्त की। बाल्यावस्था में ही आपको कविता करने की रुचि थी। आपने ब्रजभाषा में रचनाएं आरम्भ की, किन्तु आगे खड़ी बोली में करने लगे। आपने भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी में नाटकों का सर्जन आरम्भ किया। आपके नाटक ऊँची श्रेणी के, भारत के अतीन गौरव को जाग्रत करनेवाले हैं। आपने उपन्यास तथा कहानियाँ भी लिखी है। बहुत से गीतों के अनि-रिक्त आपने कविता की एक सुन्दर पुस्तक ‘श्रीसू’ तथा एक प्रबन्ध काव्य ‘कामायनी’ लिखी है जो ‘मङ्गला प्रसाद पारिणोपक’ से पुरस्कृत हैं। आप हिन्दी कविता में उस शैली के प्रवर्तक माने जाते हैं जिसे छायावाद कहते हैं।

यहाँ उद्धृत कविता प्रसादजी के नाटक ‘स्कन्दगुप्त’ से ली गई हैं। विजय के समय विजयी लोग आनन्दोत्सव में अपने देश के प्रति यह गीत गाने हैं, भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का संकेत करने हुए हमारे प्राचीन गौरव तथा संस्कृति का स्मरण कवि ने कराया है। प्राचीन इति-हास का भी दिग्दर्शन हो जाता है, हमारे जातीय गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। कविता में सम्भारता है और भावों का स्तर बहुत ऊँचा है। भाषा में शोज भी है, प्रवाह भी है, माधुर्य भी है। इस कविता में हमें विशुद्ध प्राञ्जल हिन्दी का प्रयोग मिलता है।

दूसरा अंश महात्मा गौतम बुद्ध ने सारनाथ में लक्ष्णा की कछार में जो संदेश दिया था, उस संबंध में है। दोनों रचनाएँ हमारी भारतीय संस्कृति की द्योतक हैं। प्रसाद बहुत बड़े भारतीय कवि हैं।

भारतवर्ष

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार ।
उषा ने हंस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार ॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक ।
व्योम तम पुंज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक ॥

विमल वाणी ने बीणा ली, कमल कोमल कर में सप्रीत ।
सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम संगीत ॥
बचाकर बीज रूप से सृष्टि, नाव पर भेल प्रलय का शीत ।
अरुण केतन लेकर निज हाथ, वरुण पथ में हम बढ़े अभीत ॥

सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारी जातीयता विकास ।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थियुग का मेरे इतिहास ॥
सिन्धु सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उसाह ।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह ॥

धर्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी वन्द ।
हमों ने दिया शान्ति सन्देश, सुखी होते देकर आनन्द ॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम ।
भिल्ल होकर रहते सम्राट, दया दिखलाते घर घर घूम ॥

यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि ।
मिला था स्वर्ण भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि ॥
किसी का हमने छोना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं ।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं ॥

जातियों का उत्थान पतन आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर ।
खड़े देखा, भेला हसते, प्रलय में पले हुए हम वीर ॥

चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न ।
 हृदय के गौरव में था गर्व, किसीको देख न सके बिपन्न ॥
 हमारे संयम में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव ।
 वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव ॥
 वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान ।
 वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य्य सन्तान ॥
 जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष ।
 निष्ठावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष ॥

—:❀:—

वरुणा की शांत कछार

अरी वरुणा की शांत कछार

तपस्वी के विराग की प्यार

सतत व्याकुलता के बिभ्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज ।
 जगत नश्वरता के लघुप्राण, लता पादप सुमनों के पुंज ॥
 तुम्हारी कुटियों में चुपचाप चल रहा था उज्ज्वल व्यापार ।
 स्वर्ग की वसुंधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार ॥
 तुम्हारे कुंजों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद ।
 देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद ॥
 स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिपढ़ें करती थीं सुविचार ।
 भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ॥
 छोड़कर पार्थिव भोग-विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार ।
 पिता का वक्त भरा वात्सल्य पुत्रका शैशव मुलभ दुलार ॥
 दुःखका करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार ।
 सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार ॥

मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत की ज्वाला करती शांत ।
 तिमिर का हरने को दुखभार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत ॥
 देव करसे पीड़ित विलुब्ध, प्राणियों से कहे उठा प्रकार ।
 तोड़ सकते हो तुम भव बंध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार ॥
 छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार ।
 दुख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार ॥
 विश्व मानवता का जय घोष, यहीं पर हुआ जलद स्वर मंद्र ।
 मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रविचंद्र ॥
 तुम्हारा वह अभिनंदन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार ।
 सकल वसुधा को दे संदेश, धन्य होता है बारंवार ॥
 आज कितनी शताब्दियाँ बाद, उठी ध्वंसों में वह भंकार ।
 प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगंत, विश्व वाणी का बने बिहार ॥

अरी वरुणा की शांत कद्वार ।

तपस्वी के विराग की प्यार ॥



सुभद्रा कुमारी

[१९६१-२००५]

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म प्रयाग में क्षत्रिय कुल में हुआ था । आपकी शिक्षा प्रयाग में हुई थी । आपकी रुचि आरंभ से ही साहित्य की ओर थी । सार्वजनिक कार्यों में आपका बहुत कुछ योगदान रहा है । आपके सामाजिक विचार बहुत उदार थे । आपका विवाह जबलपुर में हुआ वहीं आप अनेक बार जेल गयीं । वहीं आप एम. एल. ए. भी थीं । किन्तु आपने साहित्य-सृजन नहीं छोड़ा । आपको दो बार हिंदी साहित्य सम्मेलन से सेखसरिया पुरस्कार मिल चुका है ।



सुभद्रा कुमारी आपकी शैली सरल होती थी । साधारण जनता भी आपकी रचनाओं से रस लेती थी । आप वीर-रस और वात्सल्य भावों की मर्मस्पर्शी रचनाएँ करती थीं । यहाँ आपने अपना क्षेत्र बनाया था । आपकी पुस्तकें मुकुल, बिखरे मोती, त्रिधारा, कादंबिनी हैं ।

यहाँ दो अवतरण दिये जा रहे हैं । पहला झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के संबंध में है । जिस वीरता से उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में इस देश का मुख उज्ज्वल किया उसका वर्णन चित्ताकर्षक है । दूसरी रचना मुरझाये फूल पर है । इसमें बहुत कोमलता है । अभिप्राय है कि जो दीन हैं, दुखी हैं, उनके प्रति हमें करुण होना चाहिये ।

भाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरङ्गी का करने की सबने मन में ठानी थी,

चमक उठा सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

कानपूर के नाना की मुहबोली वहन 'छबोली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम. पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह, नाना के सँग खेला थी,
बरछी, ढाल, कृपाण. कटारी उसकी यही सहेली थी.

वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद जवानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये थे उसके प्रिय खिलवार,

महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी भाँ आराध्य भवानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई भाँसी में,
ब्याह हुआ, रानी बन आई लक्ष्मीबाई भाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई भाँसी में,
सुभट बुन्देलों की बिरुदावलि-सी वह आई भाँसी में,

चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

रानी रोई रनिवासों में बेगम गम से थीं बेज्जार,

उनके गहने-कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाजार,

सरे-आम नीलाम छापते थे अंग्रेजों के अखबार,

‘नागपूर के जेवर ले ला,’ ‘लखनऊ के लो नौलखहार’,

यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

कुटियों में थी विपम वेदना, महलों में आहत अपमान,

वीर सैनिकों के मन में था, अपने पुरखों का अभिमान,

नाना धुन्धूपन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान,

बहिन छवीली ने रण-चण्डी का कर दिया प्रकट आह्वान,

हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

महलों ने दी आग भोपड़ों ने ज्वाला सुलगाई थी,

यह स्वनन्त्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी,

भाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ में लपटें छाई थीं,

मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,

जबलपूर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ।

इस स्वतन्त्रता-महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,

नाना धुन्धूपन्त, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,

अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक आभराम,

भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,

लेकिन आज जुम कहलाती उनकी जो कुरबानी थी ।

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

इनकी गाथा छोड़ चलें हम भाँसी के मैदानों में,

जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मैदानों में,

लेफ्टिनेण्ट वौकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में,

रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में,

ज़ख्मी होकर वौकर भागा, उसे अजब हैरानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार,

घोड़ा थककर गिरा भूमि पर; गया स्वर्ग तत्काल सिधार,

जमुना-तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,

विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,

अंग्रेजों के मित्र संधिया ने छोड़ी रजधानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,

अबके जनरल स्मिथ सन्मुख था, उसने मुँहकी खाई थी,

काना और मन्दरा सखियाँ रानी के संग आई थीं,

युद्धक्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,

पर पीछे ह्यूरोज़ आगया, हाय ! घिरी अब रानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

तौ भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य के पार,

किन्तु सामने नाला आया था वह सङ्कट विषम अपार,

घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आगये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार-पर-वार,

घायल होकर गिरि सिंहनी उसे वीर-गति पानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,

यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,

होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,

हो मदमाती विजय, मिटा दे गालों से चाहे भाँसी,

तेरा स्मारक तू ही होंगी, तू खुद अमिट निशानी थी ।

बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी ।

खूब लड़ी मर्दानो वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

मुरझाया फूल

यह मुरझाया हुआ फूल है ।

इसका हृदय दुखाना मत ॥

स्वयं विखरने वाली इनकी ।

पंखुरियाँ विखराना मत ॥

गुजरो अगर पास से इसवे ।

इसे चोट पहुँचाना मत ॥

जीवन की अंतिम घड़ियों में ।

देखो, इसे रुलाना मत ॥

अगर हो सके तो ठण्डी ।

बून्दें टपका देना प्यारे ॥

जल न जाय संतप्त हृदय ।

शीतलता ला देना प्यारे ॥

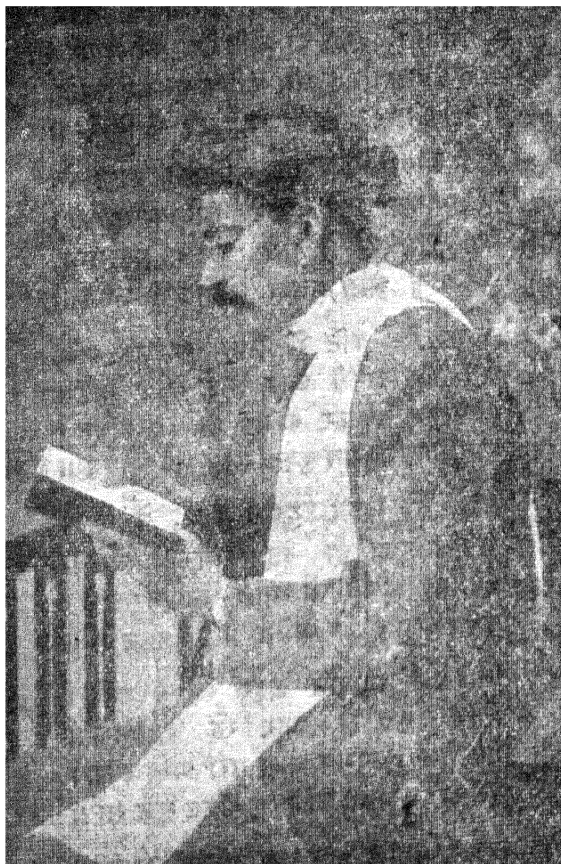
मैथिलीशरण गुप्त

[जीवित]

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संपन्न कुल में भांसी जिले के चिरगांव में हुआ था। आपके पिता जी भी कवि थे। उनका भी प्रभाव इन पर पड़ा। खड़ी बोली की कविता जिस समय शैशव काल में थी आपका आविर्भाव हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से आपको बहुत प्रोत्साहन मिला और उस युग में सरस्वती में आप बराबर लिखा करते थे। उस समय 'भारत-भारती' लिखकर आप भारत-विख्यात हो गये। इसमें भारत के अतीत तथा वर्तमान का चित्रण ओजपूर्ण भाषा में किया गया है। राष्ट्रीय जागरण में उसने बहुत सहायता की।

आप प्रबंध-काव्य बहुत अच्छा लिखते हैं। आपकी रचनाओं में घटना का वर्णन तथा भावाभिव्यंजन दोनों विशेषरूप से पाये जाते हैं। आप सभी रसों का परिपाक सुंदरता से करते हैं। आपकी भाषा शुद्ध सरल और व्याकरण-सम्मत होती है। आपकी एक और विशेषता है। समय के अनुसार आपकी शैली में परिवर्तन होता गया है। जयद्रथवध, साकेत, यशोधरा आपके सुंदर प्रबंध-काव्य है। आपकी तीस-चालीस पुस्तकें हैं।

नीचे जो अवतरण दिये जाते हैं वह साकेत से हैं। पहला अवतरण वह है जब सीतार्जी चित्रकूट में एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई गा रही हैं। रामचंद्र उन्हें देख रहे हैं। वनस्थली में यशस्वी सीता की छवि का वर्णन तथा उनके गान में भावों की अभिव्यक्ति कवि ने सुंदरता और कुशलता से की है। अंतिम दो गीत उर्मिला के मुख से गवाये गये हैं। वियोगा-वस्था में उर्मिला ने यह गाये हैं। प्रकृति के सौंदर्य को कवि ने उर्मिला के मनोभावों को मिलाया है।



बा० मैथिलीशरण गुप्त

वनमें सीताजी

तरुतले बिराजे हुए, शिला के ऊपर,
कुछ टिके, धनुष की कोटि टेक कर भू पर ।
निज लक्ष्मि सिद्धि सी, तनिक घूमकर तिरछे,
जो सींच रही थी पर्णकुटी के विरछे ॥

उन सीता को, निज मूर्तिमती माया को,
प्रणयप्राणा को और कान्तकाया को ।
यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख जोति ज्यों जागी ॥

अंचल पट कटि में खोंस, कछोटा मारे,
सीता माता थी आज नई छवि धारे ।
थे अंकुर हितकर कलश पयोधर पावन ।
जन मातृ गर्वमय कुशल वदन भव भावन ॥

पहने थीं दिव्य दुकूल अहा, वे ऐसे ।
उत्पन्न हुआ हो देह सग ही जैसे ॥
कर, पद, मुख तीनों अतुल अनावृत पट से ।
थे पन्त पुंज में अलग प्रसून प्रकट से ॥

कन्धे ढक कर कच छहर रहे थे उनके ।
रक्तक तक्षक से लहर रहे थे उनके ॥
मुख धर्म बिन्दुमय आंस भरा अम्बुज सा ।
पर कहाँ कंटकित नाल सुपुलकित भुज सा ॥

पाकर विशाल कच भार एड़ियाँ धँसती ।
तब नखज्योति मिष, मृदुल अंगुलियाँ हंसती ॥
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ते ।
तब अरुण पर जो निज छाप छोड़ते चलते ॥

रुकने भुकने में ललित लंक लच जाती ।
 पर अपनी छविमें छिपी आप बच जाती ॥
 तनु गौर केतकी कुसुम कली का गाभा ।
 थी अंग सुरभि के संग परंगित आभा ॥

भौरो से दूषित कल्प लता-सी फूली ।
 गाती थी गुनगुन गान मान-सी मूली ॥
 निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया ।
 मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया ॥

सम्राट स्वयं प्राणेश, सचिव देवर है ।
 दंते आकर आशीष हमें मुनिवर है ॥
 धन तुच्छ यहाँ, यद्यपि असंख्य आकर है ।
 पानी पीते मृग सिंह एक तट पर है ॥

सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया ।
 मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ॥
 क्या सुन्दर लता बितान तना है मेरा ।
 पुंजाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा ॥

जल निर्मल, पवन, पराग सना है मेरा ।
 गढ़ चित्रकूट दृढ़ दिव्य बना है मेरा ॥
 प्रहरी निर्भर परिखा प्रवाह की काया ।
 मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ॥

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ ।
 अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ ॥
 श्रमवारिविन्दुफल, स्वास्थ्य शुक्ति जलती हूँ ।
 अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ ॥

तनु लता सफलता स्वादु आज ही आया ।
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ॥
जिनसे ये प्रणयी प्राण त्राण पाते हैं ।
जी भर कर उनको देख जुड़ा जाते हैं ॥

जब देव कि देवर विचर विचर आते हैं ।
तब नित्य नये दो एक द्रव्य लाते हैं ॥
उनका वर्णन ही बना विनोद सवाया ।
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ॥

आओ कलापि निज चन्द्रकला दिग्वलाओ ।
गाओ पिक मैं अनुकरण करूं, तुम गाओ ॥
स्वर खींच तनिक यो उसे घुमाते जाओ ।
शुक, पदों मधुर फल प्रथम तुम्होंने खाया ॥

मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ।
आयि राजहंसि तू तरस तरस क्यों रोती ॥
तू शुक्ति वंचिता कहीं भेधिली होनी ।
तो श्यामल तनुके श्रमज विन्दुमय मोती ॥

निज व्यजन पक्ष से तू अंकोर सुध खोती ।
जिन पर मानव ने पद्म रूप मुद् वाया ॥
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ।
ओ निर्भर, भरभर नाद मुता कर ऋडू ॥

पथ के रोड़ों से उलझ मुलझ, बड़ थड़ तू ।
ओ उत्तरीय, उड़ मोद पयोद, घुमड़ तू ॥
हम पर गिरि गदगद भाव, सदैव उमड़ तू ।
जीवन को तूने गीत बनाया, गाया ॥

मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ॥
 ओ भोली कोल किरात भिल्ल वालाओ ।
 मैं आप तुम्हारे यहां आ गई, आओ ॥
 मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ ।
 दो अहो, नव्यता और भव्यता पाओ ॥
 लो, मेरा नागर भाव भेट जो लाया ।
 मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ॥
 सब ओर लाभ ही लाभ बांध विनिमय में ।
 उत्साह मुझे है विविध वृत्त संचय में ॥
 तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में ।
 आओ, हम काते बुने गान को लय में ॥
 निकले फूलों का रंग, दंग से लाया ।
 मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया ॥

गीत

सन्धि निग्ध नदी की धारा ।
 ढलमल ढलमल चंचल अंचल, भलमल भलमल तारा ।
 निर्मल जल अन्तःस्तल भरके,
 उछल उछल कर, छल छल करके,
 थल थल तरके, कल कल धरके,
 विखरता है पारा !
 सन्धि, निग्ध नदी की धारा ।
 लोल लहरियाँ डोल रही हैं,
 भू-विलास-रम घोल रही हैं,
 इंगित ही में बोल रही हैं,
 मुखरित कूल किनारा !

सखि निरख नदी की धारा ।
पाया—अब पाया वह सागर,
चली जा रही आप उजागर ।
कब तक आवेंगे निज नागर

अवधि दूतिका-द्वारा ?

सखि निरख नदी की धारा ।

मेरी छाती दलक रही है,
मानस-शफरी ललक रही है,
लोचन सीमा छलक रही है,

आगे नहीं सहारा !

सखि निरख नदी की धारा ।

गीत

हम राज्य लिये मरते हैं !
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं ।

जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न ?

पत्नी सहित विचरते हैं वे, भव-वैभव भरते हैं !
हम राज्य लिये मरते हैं !

वे गोधन के धनी उदार,
उनको सुलभ सुधा की धार,
सहनशीलता के आगर वे श्रम सागर तरते हैं !
हम राज्य लिये मरते हैं !

यदि वे करें, उचित है गर्व
बात बात में उत्सव-पर्व,

(१२५)

हमसे प्रहरी रक्तक जिसके वे किसमे डरते हैं !
हम राज्य लिये मरते हैं !

करके मीन-मेख सब ओर,
किया करें बुध वाद कठोर,
शाखामयी बुद्धि तज कर वे भूल धर्म धरते हैं ।
हम राज्य लिये मरते हैं !

होते कहीं वही हम लोग,
कौन भोगता फिर ये भोग ?
उन्हीं अन्नदाताओं के सुख आज दुःख हरते हैं !
हम राज्य लिये मरते हैं !

सियारामशरण

[जीवित]

आप मैथिलीशरण गुप्त के अनुज हैं और वहीं चिरगांव में रहते हैं। अपने बड़े भाई की भाँति आप भी सरल तथा सीधे स्वभाव के हैं। आप भी बहुत सुन्दर रचना करते हैं। रचनाएँ भाव तथा भाषा से पूर्ण हैं। स्वभाव के ही अनुसार आपकी शैली सरल होती है। राष्ट्रीयता तथा भारतीय संस्कृति की व्यंजना आपकी रचनाओं में होती है। कहानी और उपन्यास भी, आप लिखते हैं।

सियारामशरण की रचनाओं की भावनाएँ कोमल होती हैं। करुण और प्रेम तथा वात्सल्य के रुचिर भाव आपकी रचना में मिलते हैं। आपकी भाषा सरल होती है, क्लिष्टता बिल्कुल नहीं होती। साथ ही प्रांजल होती है।

यहां जो कविता दी जा रही है वह कवि के विशाल मन के भाव को व्यक्त कर रही है। रजकण उड़कर पर्वत के पास आया है और आशा लेकर आया है कि विराट पर्वत से उसे कुछ प्रसाद प्राप्त होगा। पर्वत की व्यापकता और कण की लघुता देखिये। इसीकी तुलना आत्मा और परमात्मा से कीजिये।

सियाराम शरण की मुख्य पुस्तकें नारी, मृगमयी, बापू तथा अनेक संग्रह हैं।

रजकण

अचल मौन साधन में है तू
हे गिरीश, है अडिग अडोल ;
मैं निश्चय करके आया था
सुन लूँगा तेरे दो बोल ।

तेरा यह ऐसा विराट वपु !
चाकित होगयी मति मेरी ;
तू तो है ऊपर अनन्त में
थकित होगयी गाँत मेरी
तेरे पादमूल में आकर
जब मैंने ऊपर देखा,
बंकड़ भाँ मैं नहीं, और यह
तुझ सी ही यह आकृति तेरी ।

पूरा तुझे देख तो लूँ मैं
फैलाकर ये नयन अलोल
मैं निश्चय करके आया था
सुन लूँगा तेरे दो बोल

कोई सुकृति पवन ही मुझको
इस ऊँचे तक है लाया
हे गिरीश जो मैं यह रजकण
तेरे पदतल में आया ।

मिला बहुत मुझको इतना भी
है किस-किस का पुण्य प्रताप
किन्तु लोभ है लोभ, कह रहा;
कर लूँ कुछ तुझसे आलाप

तेरी वाणी का गुरु-गौरव
वहन कर सकूँगा यह मैं ?
तब तो एक बूँद डो लेगी
सागर का निर्घोष अमाप !

मेरे लिये मौन ही तेरा
अर्थ - भरित है मन भाया ,
कोई सुकृति - पवन ही मुझको
इस ऊँचे तक है लाया ।

आहा ! अमृत चुवा कानों में—
यह तेरे निर्भर का नाद !
ओ मौन - व्रत, फूट पड़ा है
तेरे अन्तस का संवाद ।

गिरा चुरा लाया तेरी यह
अमल खोत-शिशु भीतर से,
मुखर हो गया छूट-छूट यह
ओ विशाल, तेरे कर से

एक नहीं, ये तो अनेक हैं,
एक दूसरे से गुंथ कर,
सुस्वर की छीना-भपटी-सी
करते हैं कल - कल स्वर से ।

इनमें मिल - घुलकर यह मैं भी
ले लूँ इस लीला का स्वाद ;
आहा ! अमृत चुवा कानों में,—
तेरे निर्भर - कुल का नाद !

रहे मौन तू तेरी बाणी
गूँज रही वह वन वन में;
मुझे खींच यह नव निर्भरिणी
बहा ले गई कीर्तन में।
निर्भरिणी ही तरणी मेरी;
तां लो यह मैं जाता हूँ
मग के उपलउ पल पर तेरी
धवल गिरा छितराता हूँ।

आया था जो अभी अतिथि सा
क्षण में ही वह स्वजन हुआ
क्या मैं रजकण हूँ निज कोही
अब यह यान कपाता हूँ।
विखर गई जड़ता तन मनकी
तरल तरंगिनि जीवन के
रहे मौन तू तेरी बाणी
गूँज रही यह वनवन में

निराला

[जीवित]

निराला का पूरा नाम सूर्यकांत त्रिपाठी है। बंगाल के पहिजा राज्य में आपका जन्म हुआ था। आपने प्रारंभ में बंगाली फिर हिंदी का अध्ययन किया। आप बड़े प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। कहानी, कविता, उपन्यास, निबंध सब आप लिख सकते हैं। आप विशुद्ध प्रांजल हिंदी लिखते हैं। कभी-कभी आपकी भाषा इसलिये कठिन हो जाती है कि बहुत भाव थोड़े शब्दों में रखना चाहते हैं। आपने जितने छंदों का प्रयोग किया है और छंदों में नवीनता आ लाये हैं वह किसी और कवि ने नहीं किया है। आपकी कविता में ओज भी है माधुर्य भी। आपने अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति खूब की है। आपकी रचनाएँ विषय और रूप दोनों की दृष्टि से क्रांतिकारी हैं। रूढ़ियाँ आपने तोड़ दी हैं। अनेक सग्रहों और गीतों के अतिरिक्त तुलसीदास, राम की शक्तिपूजा आपके खंड-काव्य हैं। कुकुर मुत्त व्यंगप्रधान काव्य है। अनामिका, परिमल, अपरा, गीतिका नये पक्षे आपके संग्रह हैं।

नाचे जो अवतरण दिया जा रहा है वह उनकी वीर-रस की रचना परिमलमें से दिया जा रहा है। इसमें देश के जागरण का आवाह किया गया है। भाषा भी ओजपूर्ण है, और भावों की ऊँचाई है।

जागो फिर एक बार !

जागो फिर एक बार !

समर में अमर कर प्राण
गान गाये महासिन्धु से
सिन्धु नद तीर वासी
सैन्धव तुरंगां पर

चतुरंग चमूसंग
सवा सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊंगा
गोविन्द सिंह निज

नाम जब कमाऊंगा
किसने सुनाया यह
वीर जन मोहन अति
दुर्जय संग्राम राम

फाग का खेला रण
बारहो महीनों में
शेरो की मांद में
आया है आज म्यार

जागो फिर एक बार !

सत् श्री अकाल,
भाल अतल धक्क कर जला
भस्म हो गया था काल
तीनों गुण तापत्रय,
अभय हो गये थे तुम

मृत्युंजय व्योमकेश के समान
अमृत सन्तान तीव्र
भेदकर सप्तावरण मरण लोक
शोकहारी पहुँचे थे वहाँ
जहाँ आसन है सहस्रवार

जागो फिर एक बार !

सिंही की गोद से
छिनता रे शिशु कौन
मौन भी क्या रहती वह

रहते प्राण रे अजान
एक मेष माता ही
रहती है निर्निर्मेष
दुर्बल वह—

छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तृप्त आँसू बहाती हैं;—
किन्तु क्या,

योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है, गीता है
स्मरण करो बार बार

जागो फिर एक बार !

पशु नहीं, वीर तुम,
समर शूर क्रूर नहीं,

काल चक्र में हो दबे
आज तुम राजकुंवर !- समर सग ताज !
पर, क्या है,
सब माया है-माया है,
मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा विहीन बन्ध छन्द ज्यों
दूबे आनन्द में मच्चिदानन्दरूप
महा मन्त्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओंमें फुंका हुआ
तुम हो महान, तुम सदा हो महान
हे नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम
पद रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्वभार
जागो फिर एक बार !

सुमित्रानंदन पंत

[जीवित]

पंत जी का जन्म अल्मोड़ा में कौसानी में हुआ था । आपकी शिक्षा वहां तथा काशी में हुई थी । आपने पहले छायावादी शैली अपनायी थी जिस शैली पर पल्लव, वीणा तथा गुंजन नाम के संग्रह प्रकाशित हुए हैं । उसके पश्चात् आपने यथार्थवादी कविता आरंभ की जिनमें ग्राम तथा समाज के जीवन का वर्णन आपने उस ढंग से किया जो उन्हें दीख पड़ा । आपने पुनः अपनी शैली बदली और प्रकृति तथा सामाजिक जीवन का मधुर चित्रण करने लगे ।

आपकी पदावली बहुत कोमल होती है । हिंदी खड़ी बोली को मधुर बनाने का बहुत श्रेय आपको है आपकी पदावली मनोहर भी है कोमल भी । आपकी कल्पना की उड़ान गम्भीर होती है किन्तु शुष्क नहीं होती । भावों को चित्रित करने में आप बहुत कुशल हैं । आपकी पंक्तियां नयनाभिराम चित्र उपस्थित कर देती हैं । मूलतः आप प्रकृति के कवि हैं । और आपने विचित्र रूपों में उसकी तसवीर खींची है । जहां मनुष्य के वर्णन भी करते हैं वहाँ प्रकृति के साथ उसका सामं-जस्य भी उपस्थित कर देते हैं ।

नांचे उनके दो अवतरण दिये जाते हैं । पहला प्रार्थना है । दूसरा अवतरण ग्राम की छवि वर्णन है । ग्राम पहले किस अवस्था में थे और अब वर्तमान सभ्यता में उनका क्या स्वरूप है यह बताया गया है । ग्राम-जीवन में क्या दोष आगये हैं इसपर दृष्टि डाली गयी है । आगे कवि ने संकीर्णता छोड़ कर विशाल विश्व का प्रेम बताया है ।

आपकी रचनाओं की संख्या अधिक है । मुख्य काव्य यह हैं— वीणा, पल्लव, गुंजन, ज्योत्स्ना, ग्राम्या, युगवाणी, स्वर्ण धूलि, मधुज्वाल, अंधि, पल्लविनी, स्वर्ण किरण ।

प्रार्थना

जग के ऊर्वर आँगन मे
बरसो ज्योतिर्मय जीवन ?
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन !

बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय धन;
स्मिति स्वप्न अधर पलकों में,
उर अंगों में सुख यौवन !

छू छू जग के मृत रज-कण
कर दो तृण तरु में चेतन,
मृन्मरण धौध दो जग का,
दे प्राणों का आलिङ्गन ?

बरसो सुख बन सुखमा बन,
बरसो जग जीवन के घन !
दिशि दिशि में औ, पल पल में
बरसो संमृति के सावन !

ग्राम-देवता

राम राम,

हे ग्राम देवता, भूति ग्राम !

तुम पुरुष प्रगलन, देव सनातन, पूर्ण काम ।
शिर पर शोभित वर छत्र तड़ित भिन्न घनश्याम ॥
वन पवन मर्मरित-व्यजन, अन्न फल श्री ललाम ।
तुम कोटि बाहु, वर हलधर, कृपिवाहन बलिष्ठ ।

मित असन निर्वसन क्षीणोदर चिर सौम्य शिष्ट ॥
 शिर स्वर्ण शस्य मंजरी मुकुट, गणपति वशिष्ट ।
 वाग्युद्ध वीर क्षण शुद्ध धीर नित कर्मनिष्ठ ॥
 पिक-वयनी मधु ऋतु से प्रतिवत्सर अभिनन्दित,
 नव आम्र मंजरी मलय, तुम्हें करता अर्पित,
 प्रावृट में तब प्रांगण घन गर्जन से हर्षित,
 मर्कत कल्पित नव हरित प्ररोहों में पुलकित ।
 शशि मुखी शरद करती परिक्रमा कुन्द स्मित,
 बेणी, मे खोंसे काँस, काँन में कुँई लसित,
 हिम तुमको करता तुहिन, मोतियों से भूषित,
 बहु सोन कोक युग्मों से तब सरि-सर कूजित ।
 अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप मोहित कविमन,
 नभ के नीलम संपुट में तुम मरकत शोभन,
 पर खोल आज निज अंतःपुर के पट गोपन,
 चिर मोह मुक्त कर दिया देव, तुमने यह जन ।

राम राम

हे ग्राम देवता, रूढ़ि धाम !

तुम स्थिर परिवर्तन रहित कल्पवत एक याम,
 जीवन संघर्षण विगत प्रगति पथ के विराम,
 शिक्षक तुम, दस वर्षों से मैं सेवक, प्रणाम ।
 कवि अल्प उड़प मति, भव तितीर्षु-दुस्तर अपार,
 कल्पना पुत्र मैं, भावी द्रष्टा, निराधार,
 सौन्दर्य स्वप्न चर-नीति दंडधर तुम उदार,
 चिर परंपरा के रक्षक, जन हित मुक्त द्वार ।

दिखलाया तुमने भारतीयता का स्वरूप,
जन मर्यादा का श्रोत शून्य चिर अन्ध कृप,
जग से अबोध जानता न था मैं छाँह धूप,
तुम युग-युग के जन विश्वासों के जीर्ण मृप ।

यह वही अवध ! तुलसी की संस्कृति का निवास !
श्रीराम यहीं करते, जन-मानस में विलास !
अह, सतयुग के खंडहर का यह दयनीय हास !
वह अकथनीय मानसिक दैन्य का बना ग्राम !!

ये श्रीमानों के भवन आज साकेत धाम !
संयम तप के आदर्श बन गये भोग काम !
आगधित सत्त्व यहाँ, पूजित धन, वंश नाम !
यह विकसित व्यक्तिवाद की संस्कृति राम ! राम !!

श्री राम रहे सामंत काल के ध्रुव प्रकाश,
पशु जीवी युग में नव कृषि संस्कृति के विकास,
कर सके नहीं वे मध्य युगों का तम विनाश,
रहे सनाजनता के तब से क्रीत दाम ।

जन पशु युग के थे गण देवों के पूजित पशुपति,
धी रूद्र चरों में कंठित कृषियुग की उन्नति ।
श्री राम रूद्र की शिव में कर जन हित परिणति,
जीवित कर गये अहिल्या को थे सीता पति !

वाल्मीकि बाद आये श्री व्यास जगत बंदित,
वह कृषि संस्कृति का चर्मोन्नत युग था निश्चित;
वन गये राम तब कृष्ण, भेद मात्रा का मित,
वैभव युग की वंशी से कर जन मन मोहित ।

तब से युग युग के हुए चित्र पट परिवर्तित,
'तुलसी' ने कृषि युग मन अनुरूप किया निर्मित ।
खो गया सत्य का रूप रह गया नामामृत,
जन समाचरित वह सगुण बन गया आराधित !

गत सक्रिय गुण वन रूढ़ि रीति के जाल गहन,
कृषि प्रमुख देश के लिये हो गये जड़ बन्धन ।,
जन नहीं यंत्र जीवनोपाय के अब बाहन,
संस्कृति के केन्द्र नव वर्ग अधिप जन साधारण !

उच्छिष्ट युगों का आज सनातन व्रत प्रचलित,
बन गयी चिरंतन रीति नीतियाँ स्थितियाँ मृत ।
गत संस्कृतियाँ थीं विकसित वर्ग व्यक्ति आश्रित,
तब वर्गव्यक्तिगुण, जन समूहगुण भव विकसित ।

अति मानवीय था निश्चित विकसित व्यक्तिवाद,
मनुजों में जिसने भरा देव-पशु का प्रमाद ।
ज्ञान जीवन बना न विशद, रहा वह निराह्लाद,
विकर्मित नर नर अपवाद नहीं, जनगुण विवाद ।

तब था न वाष्प विद्युत का जगमें हुआ उदय ।
थे मनुज यंत्र युग पुरुष सहस्र हस्त बल मय ।
अब यंत्र मनुज के कर पद बल, सेवक समुदाय,
सामन्त मान अब व्यर्थ,—समृद्धि विश्व अतिशय ।

अब मनुष्यता को भौतिकता पर पानी जय,
गत वर्ग गुणों को जन संस्कृति में होना लय;
देशों, राष्ट्रों को मानव जग बनना निश्चय,
अन्तर जग को फिर लेना बहिर्जगत आश्रय ।

राम राम,

हे ग्राम देवता, यथा नाम

शिक्क हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम ।
विजया, महुआ, ताड़ी, गांजा पी सुबह शाम
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जगसे न काम !
पंडित पंडे, ओम्हा, मुखिया औ साधु संत
दिखलाते रहते तुम्हें स्वर्ग अपवर्ग पंथ ।

जो था, जो है, जो होगा,—सब लिख गये ग्रंथ,
विज्ञान ज्ञान से बड़े तुम्हारे मंत्र तंत्र ।
युग युग से जन गण, देव ! तुम्हारे पराधीन,
दारिद्र्य दुःख के कर्म में कृमि सदृश लीन !

बहु रोग शोक पीड़ित, विद्या बल बुद्धि हीन,
तुम राम-राज्य के स्वप्न देखते उदासीन !

जन अमानुषी आदर्शों के तम से कर्वालित,
माया उनके जग, मिथ्या जीवन, देह अनित;

ये चिर निवृत्ति के भोगी,—त्याग विराग विहित
निज आचरणों में नरक जीवियों तुल्य पतित !

वे देव भाव के प्रेमी—पशुओं से कुत्सित,
नैतिकता के पोषक—मनुष्यता से वंचित;

बहु नारी सेवा,—पतिव्रता ध्येयी निज हित,
वैधव्य विधायक,—बहु विवाहवादी निश्चित ।

सामाजिक जीवन के अयोग्य, समता प्रधान
संघर्षण विमुख, अटल उनके विधि का विधान ।

मानव स्वभाव के द्रोही, श्वानों के समान ।

राम राम

के ग्राम देव, लो हृदय धाम

अब जन स्वातंत्र्य युद्ध की जग में भूम धाम ।

उद्यत जनगण युग क्रांति के लिए बांध लाम,
तुम रूढ़ि रीति की खा अफ्रीम लो चिर विराम !

यह जन स्वातंत्र्य नहीं, जनैक्य का वाहक रण,
यह अर्थ राजनीतिक न. सांस्कृतिक संघर्षण ।

प्रग मुग की खंड मनुजता, दिशि दिशि के जनगण
मानवता में मिल रहे,—ऐतिहासिक यह श्रण ।

नव मानवता में जाति वर्ग होंगे सब क्षय,
राष्ट्रों के युग श्रांश परिधि में जग की लय ।

जन आज अहिंसक, होंगे कल स्नेही. सहृदय,
हिन्दू, ईसाई, मुसलमान,—मानव निश्चय ।

मानवता अब तक देश काल के थी आश्रित,
संस्कृतियां सकल परिस्थितियों से थी पीड़ित ।

गत देश काल मानव के बल से आज विजित,
अब खर्व विगत नैतिकता, मनुष्यता विकसित ।

छायाएँ हैं संस्कृतियाँ, मानव की निश्चित,
वह केन्द्र, परिस्थितियों के गुण उसमें विम्बित ।

मानवी चेतना खोल युगों के गुण कवलित
अब नव संस्कृति के वसनों से होगी भूषित ।

विश्वास, धर्म, संस्कृतियाँ, नीति रीतियाँ गत
जन संघर्षण में होंगी ध्वंस, क्षीन, परिणत ।

(१४१)

बंधन विमुक्त हो मानव आत्मा अप्रतिहत
नव मानवता का सद्ग करेगी युग स्वागत ।

राम राम

हे ग्राम देवता, रुढ़ि धाम

तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन, पूर्णकाम,
जड़वत्, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें शत शत प्रणाम ।

— — —

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

[जीवित]

आपका जन्म रीवां राज्य में नई गढ़ी में हुआ था । आप आरम्भ में ब्रजभाषा में कविता करते थे । पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के सरस्वती के सम्पादन के समय आप खड़ी बोली में कविता करने लगे । आपकी कई कविता की पुस्तकें छप चुकी हैं । आपने अनेक शैलियों में रचना की है । ठाकुर साहब कोमल भावनाओं के कवि हैं । प्रेम आपका मुख्य आदर्श है चाहे वह ईश्वर के प्रति हो, चाहे देश के प्रति और चाहे संसार के प्रति अथवा प्रकृति के प्रति । आपके गीतों में करुणा का स्वर भी पाया जाता है । आप खड़ी बोली में कवित्त लिखने में सिद्धहस्त हैं । आपकी रचनाओं के कई संग्रह निकले हैं आपने ब्रज का भी वर्णन किया है । इन छन्दों में प्राकृतिक वर्णन का छटा नहीं है, भगवान कृष्ण का ब्रज से जो सम्बन्ध है उसीका मधुर वर्णन है । कवि ने यह दिखाया है कि ब्रजभूमि कृष्णमय है, आज भी उसका वही महत्व है । आज भी वे वहां भासित होते हैं । खड़ी बोली में रचना होने पर भी ब्रज भाषा की सरसता इन छन्दों में है ।

ब्रजछटा

[१]

आते जो यहां हैं ब्रज भूमि की छटा वे देख,

नेक न अघाते हाते मोद मद माते है ।

जिस आर जाते उस और मन भाते दृश्य,

लोचन लुभाते और चित कां चुगते है ॥

पल भर को वे अपने को भूल जाते सदा,
 सुखद अतीत सुधसिन्धु मे समाते है ।
 जान पड़ता है उन्हें आज भी कन्हैया यहाँ,
 मैया मैया टेरेते है गैया को चराते हैं ॥

[२]

करते हैं निवास छवि धाम घनश्याम भृंग,
 उर कलियों में सदा ब्रज नरनारी की ।
 कण कण में है यहाँ व्याप्त द्रग सुखकारी.
 पंजु मनोहारी मूर्ति मंजुल मुरारी की ॥
 किसको नहीं है सुध आती अनायाम यहाँ,
 गोवर्धन देखकर गोवर्धनधारी की ।
 न्यारी तीन लोक से है प्यारी जन्म भूमि यही,
 जन मन हारी वृन्दा विपिनविहारी की ॥

[३]

अंकित ब्रजेश का मुँहा है सब ठौर यहाँ,
 लता द्रुम वनलियों में और फूल फूल में ।
 भूमि ही यहाँ की अदिकाल वनला सी रही,
 खाल वाला संग वह लोटे इस धूल में ॥
 कल कल रूप में है वंशी रव गुंज रहा,
 जाके सुनो कलित कलिन्दजा के कूल में ।
 ग्राम ग्राम धाम धाम में है घनश्याम यहाँ,
 किन्तु वे छिपे हैं मंजु मानस दुकूल में ॥

गूँज रही आज भी सभी के श्रवणों में वहाँ,
 रुचिर रसाल ध्वनि नुपूरों के जालकी ।
 भूल सकता है कोई ब्रज में कभी क्या भला,
 निपट निराली छटा चारु वनमाल की ॥
 समता मराल ने न नेकु कभी कर पाई,
 मंजु मन्द मन्द नन्दनन्दन की चाल की ।
 रहती दृगों में छाई उर में समाई सदा,
 छवि मनभाई बाल मदनगोपाल की ॥

[५]

अब भी मुकुन्द रहते हैं ब्रज भूमि ही में,
 देखते यहाँ के दृश्य दृग फेर फेर के ।
 छिपे उर कुंज में हैं वृन्दावन वासियों के,
 थकते वृथा ही लोग उन्हें हेर हेर के ॥
 चित्त वृत्तियाँ हैं सब गोपियाँ उन्हीं की बनी,
 रहती उन्हीं के आस पास घेर घेर के ।
 आठों याम सब लोग लेते हैं उन्हीं का नाम,
 मानो हैं बुलाते “श्याम श्याम” टेर टेर के ॥

[६]

उमड़ रहा है प्रेम पारावार मानस में,
 ब्रज वनिताएं कैसे बैठी रहें मान में ।
 किस भांति आज ब्रजराज से करें वे लाज,
 रहता सदैव है समाया वह ध्यान में ॥

मन में बसी है मूर्ति उसी मन मोहन की,
हिचके भला वे कैसे रूप रम्य पान में ।
मृदु मुरली की तान प्राण में है गूँज रही,
कैसे न सुनेगी उसे अंगुली दे कान में ॥

[७]

जिसने विपत्तियों से ब्रज को बचाया सदा,
दिव्य बल पौरुष दिग्वाया बालपन में ।
मार क्रूर कंस को स्वदेश का छुड़ाया क्लेश,
सुयश प्रकाश छिटकाया त्रिभुवन में ॥
सब को सदैव सिखलाया शुचि विश्व प्रेम,
गीता को बताया उपजाया ज्ञान मन में ।
दुख को हटाया सुख बेलि को बढ़ाया वह,
श्याम मनभाया है समाया वृन्दावन में ॥

— — —

श्यामनारायण पांडेय

[जीवित]

पांडेयजी आजमगढ़ ज़िले के रहनेवाले हैं। इस समय आप माधव संस्कृत

विद्यालय, सारंग में अध्यापक हैं।

आपने वीररस को अपनाया है।

आपकी प्रसिद्ध रचना 'हल्दीघाटी'

पर दो हजार रूपयों का देव पुरस्कार

मिल चुका है। इसमें महाराणा

प्रताप तथा सुगलों के युद्ध का वर्णन

है। आपका दूसरा प्रबन्ध-काव्य

'जौहर' है। प्रसाद गुण आपकी

विशेषता है। आपकी रचना में बड़ा

प्रवाह है। छन्दों की पंक्तियां मानों

फिसलती चलती हैं।



रणयात्रा प्रकरण हल्दीघाटी से

लिया गया है। महाराणा प्रताप

श्यामनारायण पांडेय

रण करने के लिए चल पड़े हैं। इस अवतरण में भरने का और वसन्त

का वर्णन बड़ा ही मनोहर है, एवं ओज है, मधुरता है, सरलता भी है।

रणयात्रा

गणपति के पावन पांव पूज, वाणी पद को कर नमस्कार।

उस चंडी को, उस दुर्गा को, काली पद को कर नमस्कार ॥

उस कालकूट पीनेवाले के नयन याद कर लाल लाल।

डग-डग ब्रह्मांड हिला देता जिसके तांडव का ताल ताल ॥

ले महाशक्ति से शक्ति भीख, व्रत रख वनदेवी रानी का।

निर्भय होकर लिखता हूँ मैं, ले आशीर्वाद भवानी का ॥

मन भर लोहे का कवच पहन, कर एकलिंग को नमस्कार ।
 चल पड़ा वीर, चल पड़ी साथ जो कुछ सेना थी लघु अपार ॥
 घन घन घन घन घन गरज उठे रण वाद्य सूरमा के आगे ।
 जागे पुश्तैनी साहस बल, वीरत्व वीर उर के जागे ॥
 सैनिक राणा के रण जागे, राणा प्रताप के प्रण जागे ।
 जौहर के पावन क्षण जागे मेवाड़ देश के व्रण जागे ॥
 जागे शिशोदिया के सपूत, बापा के वीर वबर जागे ।
 बरछे जागे, भाले जागे, खन खन तलवार तबर जागे ॥

कुम्भलगढ़ से चलकर राणा हल्दी घाटी पर ठहर गया ।
 गिरि अरावली की चोटी पर केसरिया झंडा फहर गया ॥
 प्रणवीर अभी आया ही था अरि साथ खेलने को होली ।
 तब तक पर्वत पथ से उतरा पुंजा ले भीलों की टोली ॥
 भैरव रव से जिनके आगे रण के बजते बाजे आये ।
 इंगित पर मर मिटने वाले बे राजे महाराजे आये ॥
 सुनकर जय हर हर सैनिक रव वह अचल अचानक जाग उठा ।
 राणा को उर से लगा लिया चिर निद्रित जग अनुराग उठा ॥

नभ की नीली चादर ओढ़े युग युग से गिरिवर सोता था ।
 तरु तरु के कोमल पत्तों पर मारुत का नर्तन होता था ॥
 चलते चलते जब थक जाता दिनकर करता आराम वहीं ।
 अपनी तारक माला पहन हिमकर करता विश्राम वहीं ॥
 गिरि गुहा कन्दरा के भीतर अज्ञान सदृश था अन्धकार ।
 बाहर पर्वत का खंड खंड था ज्ञान सदृश उज्ज्वल अपार ॥
 वह भी कहता था अम्बर से मेरी छाती पर रण होगा ।
 जननी सेवक उर शोणित से पावन मेरा कण-कण होगा ॥

पाषाण हृदय भी पिघल पिघल आंसू बनकर गिरता भर-भर ।
 गिरिवर भविष्य पर रोता था जग कहता था उसको निर्भर ॥
 वह लिखता था चट्टानों पर राणा के गुण अभिमान सजल ।
 वह सुना रहा था मृदु स्वर से सैनिक के रण के गान सजल ॥
 वह चला चपल निर्भर भरभर वसुधा पर ज्वाला खोने को ।
 या थके महाराणा पद को पर्वत से उतरा धोने को ॥
 लघु लघु लहरों में ताप विकल दिनकर दिन भर मुख धोता था ।
 निर्मल निर्भर जल के अन्दर हिमकर रजनी भर सोता था ॥
 राणा पर्वत छवि देग्य रहा था, उन्नत कर अपना भाला ।
 थे विटप खड़े पहनाने को लेकर मृदु कुसुमों की माला ॥
 लाली के साथ निखरती थी पल्लव पल्लव की हरियाली ।
 डाली डाली पर बाल रही थी कुहू कुहू कोयल काली ॥
 निर्भर की लहरें चूम चूम फूलों के वन में घूम घूम ।
 मलयानिल बहता मन्द मन्द वौरे आसों में भूम भूम ॥
 जब तुहिन भार से चलता था धीरे धीरे मारुत कुमार ।
 तब कुसुम कुमारी देख देख उस पर हो जाती थी निसार ॥
 उड़ उड़ गुलाब पर बैठ बैठ करते थे मधु का पान मधुप ।
 गुन गुन गन गन गन कर करते राणा के यश का गान मधुप ॥
 लोनी लतिका पर झूल झूल, विग्नगने कुसुम पराग प्यार ।
 हँस हँसकर कलियाँ झोंक रही थी खोल पेखुरियों के किवार ॥
 तरु तरु पर बैठे मृदु स्वर से गाते थे स्वागत गान शकुनि ।
 कहते यह ही बालि वेदी है इस पर वर दो बलिदान शकुनि ॥
 केसर में निर्भर कल लाल फूल पल्लव के फूल लाल ।
 तुम भी वैरी सिर काट काट कर दो शोणित से धूल लाल ॥

तुम तरजों तरजों वीर, रखो अपना गौरव अभिमान यहीं
 तुम गरजों गरजों मिह करो रण चंडी का आह्वान यहीं ॥
 खग खग सुनते ही रोम रोम राणा तन के फगहरा उठे ।
 जरजरा उठे सैनिक अरि पर पत्ते पत्ते थरथरा उठे ॥
 तरु के पत्तों से, तिनकों से बन गया वहीं पर राजमहल ।
 उम राजकुटी के वैभव से अरि का सिंहासन गया दहल ॥
 बस गये अचल पर राजपूत, अपनी अपनी रख ढाल प्रबल ।
 जय बोल उठे राणा की रख बरछे भाले करवाल प्रबल ॥
 राणा प्रताप की जय बोलें, अपने नरेश की जय बोलें ।
 भाग्य माता की जय बोलें, मेवाड़ देश की जय बोलें ॥
 जय एकलिंग, जय एकलिंग, जय प्रलयंकर शंकर हर हर ।
 जय हर हर गिरि का बोल उठा कंकड़ कंकड़, पत्थर पत्थर ॥
 देने लगा महाराणा दिन रात समर की सिन्हा ।
 फूंक फूंक भेरी बैरी की कग्ने लगा प्रतीक्षा ॥

दिनकर

[जीवित]

दिनकर का पूरा नाम रामधारी सिंह है और दिनकर उपनाम है । आप मुंगेर जिले के समेरिया घाट के रहनेवाले हैं । पटना विश्वविद्यालय से आनर्स के साथ आपने बी. ए. परीक्षा पास की है । आप इस समय बिहार के सरकारी कालेज में हिंदी के प्राध्यापक हैं । आपका स्वभाव बहुत सज्जनोचित है । आपमें राष्ट्रियता, देशभक्ति कूट-कूटकर भरी है । आप बिहार के प्रतिनिधि कवि और हिंदी के ऊँचे तथा उत्कृष्ट कवि हैं ।

आपकी भाषा में बहुत ओज और प्रवाह है । भाषा साथ ही साथ सरल है । आपने जो रचना की हैं उसमें भारत की आत्मा को जाग्रत कर दिया है । भारत के प्राचीन गौरव को सजीव किया है । पुराने चरित्रों को नया प्रकाश प्रदान किया है । आपकी अनेक रचनाएँ हैं, जैसे रसवंती, हुंकार । कुम्भोत्र आपका प्रबंध-काव्य है । यह पुस्तक इधर हिंदी में निकली पुस्तकों में बहुत बलशाली है । महाभारत के चरित्रों को नयी दृष्टि से आपने देखा तथा नयी अभिव्यंजना की है ।

जो अवतरण दिया जा रहा है वह उस समय का है जब रण समाप्त हो गया है, भीष्म पितामह बाण-शय्या पर पड़े हैं । महाभारत के युद्ध का मिहावलोकन हो रहा है । कवित्त छंद है;—वर्णन जोरदार है । युद्ध के परिणाम पर दुःखिष्ठिर अपने विचार प्रकट कर रहे हैं । यह विचार नहीं है जो अहिंसा के प्रेमी अपने तर्क में कहा करते हैं ।

पश्चात्ताप

आई हुई मृत्यु से कहा अजेय भाग्य ने कि
योग नहीं जाने का अभा है हमें जानकर,
रुकी रहो पास कहीं, योग स्वयं लेट गए
बाणों का शयन. बाण का ही उपधान कर
व्याम करते हैं. गले चों ही वे पड़े विमुक्त,
काल के कर्ग से लीन मुक्ति गत प्राण कर
और पंथ जोंहनी विनीत नहीं आस पास
हाथ जोड़ मृत्यु रनी मर्या शान्ति मानकर ।

शृंग चढ़ जीवन के आर पात्र देरते र,
योगलान लेटे थे पितामह संभार में.
देखा धर्मराज ने विना प्रसन्न फैल गयी
श्वेत शिरामह शर अथित शरीर में
करते प्रणाम, वृते सिर से पाँधत्र पद
उंगली को धोते हुए लांचनों के नांग भ,
हाथ पितामह, महाभारत विफल हुआ
चीख उठे धर्मराज व्याकुल, आधार से .

“बीर गति पाकर मयोधन चला गया है.
छोड़ मेरे मामने अशेष ध्येय का प्रसार
छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन
व्याम में बजाता जय दुन्दुभी सा बार बार
और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष.
चुप चुप, मानों पूछता है मुझसे पुकार
विजय का एक उपहार मैं बचा हूँ. बोला,
जीत किसकी है और किसकी हुई है हार ।

“हाय पितामह, हार जिसकी हुई है यह
 ध्वंस अवशेष पर सिर धुनता है कौन
 कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है,
 लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन

और बैठ मानव की रक्त सरिता के तीर
 नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनता है कौन
 कौन देखता है शवदाह बन्धु बान्धवों का
 उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन ।

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
 तन बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता ।
 तप से, सहिष्णुता से, त्याग से, सुयोधन को,
 जीत नई नीव इतिहास की मैं धरता ॥

और वही बत्र गलता न मेरी आह से जो,
 मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता ।
 तो भी हाय, यह रक्तपात नहीं करता मैं,
 भाइयों के संग कहीं भीख मांग मरता ॥

किन्तु हाय, जिस दिन बोया गया युद्ध बीज,
 साथ दिया मेरा नहीं मेरे दिव्य ज्ञान ने ।
 उलट दी गति मेरी भीम की गदा ने और,
 पार्थ के शरासन ने, अपनी कृपाण ने ॥

और जब अर्जुन को मोह हुआ रण बीच,
 बुझती शिखा में दिया घृत भगवान ने ।
 सबकी सुबुद्धि पितामह, हाय, मारी गई,
 सबको विनष्ट किया एक अभिमान ने ॥

कृष्ण कहते हैं, युद्ध अनघ है कि तु मेरे,
 प्राण जलते हैं पल पल परिताप से ।
 लगता मुझे है क्यों मनुष्य बच पाता नहीं,
 दह्यमान इस पुराचिन अभिशाप से ॥

और महाभारत की बात क्या, गिराये गये,
 जहां दल दल से वरेण्य वीर आप से ।
 अभिमन्यु बध औं मुरोधन का बध हाय,
 हमसे बचा है यहां कौन, किस पाप से ॥

एक और सत्यमयी गीता भगवान की है,
 एक और जीवन की किराति प्रबुद्ध है ।
 जानता हूँ लड़ना पड़ा था हो विवश किन्तु,
 लोहू सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है ॥

ध्वंसजन्य सुख, या कि माश्र दुख शान्तिजन्य,
 ज्ञात नहीं. कौन बात नीति के विरुद्ध है ।
 जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य,
 या महान पाप यहां फूटा बन युद्ध है ॥

सुलभ हुआ है जो किरीट कुरुवंशियों का,
 उसमें प्रचंड कोई दाहक अनल है,
 अभिषेक से क्या पाप मन का धुनेगा कभी,
 पापियों के हिन तार्थ वारि हलाहल है

विजय कराल नागिनी सी डंसती है मुझे
 इससे न जूझने को मेरे पास बल है
 ग्रहण करूं मैं कैसे बार बार सोचता हूँ,
 राज सुख लोहू भरी कीच का कमल है ।

बालहीना माता की पुकार अभी अचती और
 आता कभी आत्तनाद पितृहीन बाल का
 आँख पड़ती है जहाँ हाय, वही देखता हूँ
 सेंदुर पुछा हुआ गुहागिनी के भाल का
 बाहर से भाग कक्ष में जो छिपता हूँ कभी
 तो भी सुनता हूँ अट्टहाम कर काल का
 और सोते जागते में चौक उठता हूँ, मानों,
 शोणित पुकारता हो अर्जुन के लाज का ।
 जिस दिन समर की अग्नि युक्त शान्त हुई,
 एक आग तब से ही जलती है मन में
 हाय, पितामह, किमी भांति नहीं देखता
 मुह दिखलाने योग्य निज को भुवन में
 ऐसा लगता है, लोग देखते घृणा से मुझे,
 धिक् सुनता हूँ अपने पै कण कण में,
 मानव को देख आँखें आप भुक्त जातीं, मन
 चाहता अकेला कहीं भाग जाऊँ वन में ।

करूँ आत्मघात तो कलंक और घोर होगा,
 नगर को छोड़ अतएव, वन जाऊँगा,
 पशु खग भी न देख पाये जहाँ, द्विप किमी
 कन्दर्ग में बैठे, अश्व खुलके बहाऊँगा,
 जानता हूँ, पाप, न धुलेगा वनवास से भी,
 छिपा तो रहूँगा, दुःख कुछ तो भुलाऊँगा
 व्यंग्य से विवेका वहाँ जर्जर हृदय तो नहीं,
 वन में कहीं तो धर्मराज न कहाऊँगा ।

टिप्पणियां

कबीर साहब

आप=ईश्वर, आत्मा । अंधियारा=अज्ञान । आपा=घमंड ।
 रासि=रेख । मुग्न पै परिया रेते=मुग्न पै भिड़ी पड़ेगी; मृग्य होगी ।
 मगका=माला का ढाना । निरमय=बना हुआ है, भाग्य में है । जलहर=
 ताल । ग्वलक चवेना कालवा = मय गृष्टि काल के बश है । दुतेला
 दुग्वदायी । मिख=शिष्य । नचना=भुकना । देवल=मंदिर । मवास=
 दुर्ग वा गढ़ । कालि=पाम । जल=ब्रह्मत्व । वन महिया=वन में ।
 तेलक=मटारी । पन = चतुर्गुं । तुलहा=उपाय ।

सूरदास

तन कुमलान = स्वस्थ है । कमला = धन । अजामेलि = एक पापी
 जिसने एक साधु के उपदेश से अपने पुत्र का नाम नारायण रखा । गरम
 समय उमने उसे पुकारा । भगवान का नाम लेने से उसे स्वर्ग हो गया ।
 करील=एक काटेदार वृक्ष । पोत = गठरी । अरगजा=सुगंधित उबटन ।
 खादि = मिट्टी । उघरि = नगा होकर, स्पष्ट होकर । अगुठ=बड़े हाथ ।
 पैग=पैर । ओहृत = कंधी करने हुए । लवन = नचनी । मवारि=गदरे ।
 छौरै=मफेट । आरि = हट । अंकोरे = गोद । पत्थरी = पत्थर का ढोना ।
 मिकते = बालू । टाधि-मुन = चंद्रमा । करडकर=हाथ में छुरी लिए हुए ।

जायसी

कारी=कालिमा । गहनो छुटि पुनि चाहै गहा=ग्रहण में छुटकर अभी
 फिर ग्रहण लगना चाहता है । गाई=गेंड । जोरा=जोड़ा, खेल का प्रतिद्वंद्वी ।

हाल = कंपन । अगमन = आगे । सकरे साथी = संकट की स्थिति । समदि =
 आनंद से । पूरुप = योधा । मसि = अंधकार । हाका = ललकारा । गोरा-(१)
 सामंत (२) सफेद । आदो = जन्मका । बादी = शत्रु । बानी = कांति ।
 इंदु = इंद्र । आइ न बाजि...हिंदू = कहीं हिंदू जान कर मुझ पर न पड़े ।
 गोरै = गोरा ने । उठौनी = पहला धावा । स्यों = साथ । कूंड = लोहे की
 टोपी । बगमेल = सवारी का पांत बांध कर चलना । अधर धरमा मारै = धड़
 या कंध अधर में वार करता है । कंध = धड़ । निनारे = कुल, बिल्कुल ।
 भोगी = जो भोग विलास करनेवाले सरदार थे । भारत = घोर युद्ध ।
 कुंवर = गोरा के साथी राजपूत । टूटै = कट जाता है । चांचर = होली ।
 धूका = झूका । एहिहाथ करडु = इसे पकड़ो । गूंजता = गरजता हुआ ।
 पलटि सिंह...आवा = जहाँ से आगे बढ़ता है वहाँ पीछे हटकर फिर नहीं
 आता । बोलै बाहाँ = उसकी बाँहें पड़कती हैं । (वह मुँह से नहीं बोलता)
 जाज, जगदेव = ऐतिहासिक वीर । रात = लाल । सरजै = सरजा ने ।
 निहाऊ = निलई । डांडा = टंड । आंड़न = टाला । गुरूज = गदा । सदूर =
 शार्दूल । तम बाजा = ऐसा आघात पड़ा । टांटर = टटरी । फिरा संसारू =
 आँखों के सामने संसार = न रह गया । मुर पहुँचावा पान = देवताओं ने
 पान का बीड़ा दिया ।

मीरा

छुद्र घाँटका = शुद्धदार काधनी ! भक्तवल्ल = भक्तवत्सल । द्रौपदी
 की लाज = महाभारतकी विख्यात कथा । हिरनकश्यप = प्रह्लाद का पिता,
 एक दैत्य । बूड़त गजराज = गजग्राह की कथा । अमोलिक = जिसका मूल्य न
 आँका जा सके । जोत में जोत मिलाना = आत्मा को परमात्मा में मिलाना ।

तुलसीदास

कामतरु = कल्पतरु । सोच न कूच मुकाम की = संसार की यात्रा के
 समय राम के नाम के कारण सोच नहीं । साम = सामवेद । सकृत = एक

(ग)

बार । ताप = क्लेश । परतीति = दिश्वास । ह्यम = दुर्बल । घोमु = घोष, प्रकार । कुंभज = जो ऋषि समुद्र सोम्य गये थे । सोमु = शोषण । पोतो = जहाज । आतो = उतना । दशरथी = दशरथ के पुत्र ।

तरनी = नाव । वन-वाहन = नाव , नौदम = नया वृक्ष । वृन = वरकस । लोचन-लाहू = लोचन का लाभ । कलेवर = अंग । मान्वे = रोप किया । छत्रक कुड = कुकुरमुत्ता । मिरिस मुभन कन = सिरिस के पुष्प का कण । कोला = वगह । कन-दाम् = खेनेवाला । वटाऊ = राहगीर ।

डावर = गदा । अक = धतुरा । जवाम = एक घाम । कलिहि = कलियुग । अगस्त = एक नक्षत्र जो भादों में सिद्ध लग्न में उदय होता है ।

रहाम

अच्युत चरन तरंगिनी = गंगा । हरि न बनायो = क्योंकि उस दशा में गंगा का मेरे चरणों में रहना पड़ेगा । इंदव भाल = जिसके ललाट पर चंद्रमा है ! अर्थात् शिव बनाना जिससे तुम मेरे सिंग पर रहो । वंस दिया = बांस पर लगाया आकाश-दीप । पत्र = पम्बुड़ी । पितहि = अर्थात् जल को । समुचि...गीत = सिकुड़कर चन्द्रमा के शीत को जल में उसकी वृद्धि के लिये पड़ने देता है । पिता-पुत्र में इतनी प्राप्ति है कि परकीय वैर भाव का कोई फल नहीं होने पाता । मुनि-पत्नी = अहत्या । अनग्वाय = बिना ग्वाये । अनग्वाय = श्रुत हो । मेस — (१) शोषनाग । (२) वरा । मूकन = मुक्ति को से । गुरवा = गर्जन । व्यावह = प्रमथ ।

केशवदाम

दंति दंती = दार्थी । राकम गक्षम । ग्वाक = राग्य । ऋदु = यज्ञ । वारन हार्थ अगिदा = शत्रु न । वेगि दे = शीघ्रता से । मुवा = यज्ञ में आहुति डालने का चम्भव है । ह्याधिगज = महत्वाद्वाहु । मेद = चरवी । खेन = रक्त । गनिये = विसिये । रेनुका = परशुराम की माता । अरुक्त = पूजा के चावल ।

(घ)

अक्षत = बिना घाव के । ह्यौ = हृदय । एक विसंति = एक और बीस, इक्कीस । सर्ची = संचित की । उबरे = बचे । जामदग्नि = परशुराम । मान = रत्न । गांधि के नंद = विश्वामित्र । छिप्र = शीघ्र । रये = कहे । हत्यो = लोड़ा । आंध = अयोध्या ।

बिहारी

ग्यानु = (१) कृष्ण, (२) कालारंग (३) पाप । हरित द्रुति = (१) पीका, कम सुंदर (२) हगारंग (३) जिवन प्रभाव हर लिया गया हो । अनाकनी = आनाकानी । जगवाइ = दुनिया की दवा । असरि = अंगीकार करके । समरु = कामदेव । कनकु = (१) धतूरा (२) सोना । प्रयागु = चिंयणी होती हैं = कृष्ण का रंग यमुना, राधा का गंगा, भक्त का अनुराग सरस्वती । साथ = समूह । पगरू = गड़हा । अपत = बिना पत्नों की । हमामु = स्नानागार । न ए = ये नहीं । नए = विनम्र । आंदु = दांव । बीचु = पक । आर्क = आक का पेड़ । अरक = गूरू । भज्यो = (१) भागा (२) भजन किया । करिया = कर्णधार । आथरो = लड़खला । वाइ = धावली । अकस = दूसरे से बढ़ जाने की स्पृहा । श्रुति = घेद । सुम्रयो = स्मृति । निस्कहीं = दुर्बल ही को । छाया-ग्राहिनी = राक्षसी, जो जल में प्रतिबिम्ब के सहारे असल वस्तु को खींच कर चट कर जाय । आड़ = गधे पर बोझ ढानेवाला । वै नै = नयी उमर रूरी नदी । कहलाने = व्याकुल । मरौं है = छेठे होकर । गैन = आकाश । वृषभानुजा = (१) राधा, वृषभानु की पुत्री (२) वृषभ की छोटी बहन । हलधर = (१) बलदेव, (२) हल खींचने वाला बैल ।

भूषण

हौसनि = उत्साह । माकत = पन्ना । पुटुपराग = पुखराज । चलानि = इलायची के वृक्ष ।

पद्मकर

थिति = स्थिति । रजत-चहार = चांदी के पहाड़ । दगादार = धोखा देने-

वाले । दिव्यवोधिन = मुंदर गलिया । पाकमागन = इन्द्र । चंदचूड़ =
जिनके निर पर चन्द्रमा है—शंकर ।

हरिश्चंद्र

प्रवेधा—नमस्कार । इनागन = इन्द्रायणः एक फल जो देखने में सुन्दर
होता है, हिलतुलाने में बहुत बड़धा । पिग = पीलावन लिये । आगेहन =
चढ़ान । अर्रोहन = उतार । अघट = जो न घटे । क-आमलक =
हथेलियों पर का आवला जो उठाए पुलक कर संपूर्ण देखा जा सकता है ।
द्वैत = यह दर्शनिक मत जपमें परमात्मा, जीव, मोह, प्रकृति अलग अलग
माने जाते हैं । अद्वैत = जिस में यह तीनों एक माने जाते हैं । नित्य =
अविनाशी । अनित्य = नाशवान । अंकम = गोट । मुक्तगुच्छ = मोतियों
का गुच्छा ।

दानदयाल गिरी

जीवन = (१) जल (२) जिन्दगी । द्विजन = (१) पक्षियों का समूह (२)
ब्राह्मण । नृमानन = (१) मंडनवन (२) कानों में स्वर । नीर-निधि = समुद्र

श्रीधर पाठक

नगराज = हिमालय । निगुन = रज, तम, सत् । त्रिवे = द्रव्या,
विष्णु, भैरव । निजन = आकाश, पाताल, मृ-युलोक । स्वेचर = पक्षी ।

रत्नाकर

गुंज-अनुली = अनुली भर गुंथयी । रंचक = तनिक । चंचल-
चित-पारद = चंचल चित्ररूपी पाग । निचौहे = नीचे । धीरज धरीन =
अत्यंत धैर्यशाली । प्रलयागन = प्रलय का आगमन ।

हरिऔध

मधु = श्वेत । पल्लवान्विता = पत्तों से युक्त । काकला = मधुर रसीली कूक ।
निसर्ग = प्रकृति । पुञ्जीकृत = मूत्र की हुई । प्रसादिका = प्रसन्न करने वाली ।
इतस्ततः = इधर-उधर । पाथोज = कमल, गुलाब । समाकुल = चारों ओर से

(च)

घिरी । वृजेश्वरी=राधिका । सुधी=सुंदरबुद्धिवाले । फव्वन=सुहाता ।
अदा=हाव-भाव । डहडहे=हरे भरे । लालरी=लाल फूलोंवाला पेड़
खिचड़ी चाल हम बूढ़े हुए । मारतीं=मारने वाले, विजयी ।

प्रमाद

कामतमपुंज=आकाश अंधकार का समूह । संस्कृति=संसार । अरुण-
केतन=लालभट्टा । पुरंदर=इन्द्र । वरुणा की शांत कछार=सारनाथ । वाद=
विवाद । भाग...अधिकार=हृदय तथा मस्तिष्क में बराबर बराबर विचारों का
विभाजन । पार्थिवभोग विभूति=सांसारिक सुख तथागत=गौतम बुद्ध ।
अतिवाद=जिसमें हमी जीवन के सम्बन्ध की बातें हो । मध्यापथ=गौतमबुद्ध
का पथ जिसमें बीच का धार्मिक मार्ग बताया गया । ध्वंसों=सारनाथ
के खंडहर ।

सुभद्राकुमारी चौहान

छोली=लक्ष्मीबाई का एक नाम । भवानी=दुर्गा । चित्रा=चित्रांगदा,
अर्जुन की स्त्री । वेगम=अवध की रानी जिनकी संपत्ति अंग्रेजों ने छीन ली
थी । नागपुर के जेवर=भोसला के राजपरिवार के गहने । नाना धुधूपंत=
नाना साहिव, महागढ़ सरदार । तंतिया तोपी=भील सरदार । अजीमुल्ला
अहमदशाह = सनावन के युद्ध के संचालक । कुदरमिह = बिहार के राजा
जो ५७ के युद्ध में लड़े थे । चौकर=अंग्रेजी जनरल ।

मैथिलीशरण गुप्त

प्रणय-प्राणा=प्रणय की जो प्राण थीं । अलख ईश्वरीय । उत्पन्न...
ऐसा ठीक मानो देह के साथ ही आया हो । लक्षक=नाग । गाभा=नयी
पत्नी । उटज=भोपड़ी । शुक्ति=सीपी । उत्तरीय=दुपट्टा । बोध विनिमय=
बुद्धि के विनिमय में । वणिक=किसान ।

(छ)

सियाराम शरण

वपु = शरीर । अलोल = एकटक । उपल-उपल = पत्थर के ढोंके ।
गिरा = वाणी ।

निराला

सवा.....चढ़ाऊंगा = गुरु गोविंद सिंह ने कहा था कि एक सिंग
सवा लाख के बराबर है । सत् श्री अकाल = सिखों के अभिवादन का ढंग ।
व्योमकेश = शिव । मिही...कौन = शकुंतला के पुत्र भरत की कथा ।

सुमित्रानन्दन-धंत

जीवन = (१) जल (२) जिदगी । संस्कृति = संसार । कृषिवाहन = खेती
करने वाले । पहली १६ पक्तियों में गाँव की प्राकृतिक शोभा तथा छवि का
वर्णन है । उसके पश्चात् गावों की जो अवस्था आज हो गयी है, रुढ़ि के
वह शिकार हैं, गति उनमें नहीं है, युग के साथ वह नहीं बताया है ।
कल्पना युक्त = कवि । साकेत-धाम = जहाँ राम रहते थे । व्यक्तिवाद = वह
सामाजिक संगठन जिसमें व्यक्ति को प्रधानता दी जाय । सामंत काल =
जब सरदारों, धनी लोगों का शासन था । अहिल्या = गौतम की पत्नी ।
वाल्मीकि = आदि कवी । व्यास = महाभारत के रचयिता । कर्दम = कीचड़ ।
अंत की पक्तियों में कवि ने विश्व की प्रगति की ओर संकेत किया है और
बताया है ग्राम कितने पीछे सभ्यता तथा प्रगति में है ।

गोपाल शरण सिंह

कलिदजा = यमुना । मानस दुकूल = मनुष्य का हृदय रूपी कपड़ा ।
अतीत सुध-सिधु = बीते समय के स्मृति समुद्र में । शस्यश्यामली = अन्न के
पौधों से भरी ।

(ज)

श्यामनारायण पाण्डेय

तांडव=शिव का नृत्य । हंगित=इशाग । शकुनि=पक्षी ।

दिनकर

उपधान=तकिया । मुष्टिगत=मुट्ठी में लेकर । धर्मराज=युधिष्ठिर ।
मुयोधन=दुर्योधन । नियति=भाग्य । मनोबल=आत्मिक शक्ति । पार्थ=
अर्जुन । दह्यमान=जलनेवाला ।

— — —

